श्रीरमापतये नमः

श्रीब्रह्मानंदमोक्षगीता ।

इयं

श्रीमत्परमहंस ब्रह्मानंदस्वामिना विरचिता

सेयं

वंबईनगरे निर्णयसागरमुद्रणालये तेनैव स्वामिना
मुद्रापयित्वा प्रसिद्धिं नीता ।

श्लोकः

गीताशास्त्रं सुविज्ञेयं किमन्यैः शास्त्रसंचयैः ।
सर्वेषामेव शास्त्राणामेका गीता परायणम् ॥

प्रथमावृत्ति २०००

संवत् १९७६, शके १८४१.

कीमत १) रुपया.

Publishad by Swami Brahmanandji,
of Pushkar, Dt. Ajmer.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the
Nirnaya-sagar Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

श्रीरमापतये नमः–

श्रीब्रह्मानंदमोक्षगीताप्रारंभः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

ाम्य परमेशानं विश्वोत्पत्त्यंतकारणम् ।
गुरूणां च पदांभोजं गीताशास्त्रं विरच्यते ॥१॥

अथ भाषाटीका ।

सर्व जगत्की उत्पत्ति नाश तथा पालन करनेहारे परमेश्वरको नमस्कार करके तथा श्रीगुरुमहाराजके चरणकमलोंमें नमस्कार करके गीताशास्त्रकी रचना करतेहैं इति ॥ १ ॥

पृथिव्याः पूर्वदेशेषु पुरमेकं मनोहरम् ।
अस्ति रम्यतरं लोके परमं मंडनं भुवः ॥ २ ॥

पृथिवीके पूर्वदिशाके देशोंमें एक अतिमनोहर और सुंदर सर्व पृथिवीका भूषणरूप नगर है इति ॥ २ ॥

नानावृक्षसमाकीर्णं नानापक्षिसमाकुलम् ।
नानाजातिजनापूर्णं नानापण्यालिशोभितम् ३

सो नगर नानाप्रकारके वृक्षोंकरके चारोंतरफसें घिरा हूया है और उसमें नानाप्रकारके सुंदर पक्षी मनोहर शब्द बोल रहे हैं और सो नानाप्रकारकी भिन्नभिन्न जातियोंवाले मनुष्योंकरके परिपूर्ण है तथा अनेकप्रकारके हाट बाजारोंकरके सर्वतरफसे शोभायमान हो रहाहै इति ॥ ३ ॥

नानादेवालयै रम्यं नानाभवनभूषितम् ।
तडागारामकूपादिरचनाभिरलंकृतम् ॥ ४ ॥

तथा सो नगर नानाप्रकारके देवमंदिरोंकरके अतिरमणीय है और नानाप्रकारके मकानोंसें विभूषित है तथा तालाव बगीचे कूप बांवली आदि स्थानोंकी सुंदर रचनायोंसें सर्वतरफसे शोभायमान हो रहाहै इति ॥ ४ ॥

धार्मिकैः पुरुषैर्युक्तं विद्वज्जनसमाश्रयम् ।
टीकमदुर्गसंज्ञं तत्सर्वशोभासमन्वितम् ॥ ५ ॥

उस नगरमें विशेषकरके धर्मात्मा पुरुष

वास करतेहैं तथा सो नगर विद्वान् पंडितलो-
कोंका आश्रयभूत है उस नगरका नाम टीकमगढ
प्रसिद्ध है तथा सो नगर सर्वप्रकारकी शोभायों-
करके संयुक्त है इति ॥ ५ ॥

तस्य राजा महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।
प्रतापसिंहो नाम्नासौ विख्यातः पृथिवीतले ६

तिस नगरका राजा बडा बुद्धिमान् और
सर्वशास्त्रोंमें कुशल प्रतापसिंह नामसे पृथिवी-
तलमें सर्वत्र विख्यात होताभया इति ॥ ६ ॥

शूरो जितेन्द्रियो धीमान् प्रजापालनतत्परः ।
योगाभ्यासरतो नित्यं सत्यधर्मपरायणः ॥७॥

सो राजा वडा शूर वीर जितेन्द्रिय विवेक-
वान् प्रजापालनमें तत्पर और योगाभ्यासमें
प्रीतिवाला तथा सर्वकाल सत्यधर्मके परायण
था इति ॥ ७ ॥

तीर्थयात्रानिमित्तेन पर्यटन्स महीमिमाम् ।
प्रयातः पुष्करं तीर्थं सर्वतीर्थवरं शुभम् ॥८॥

सो राजा एक कालमें तीर्थयात्राके निमित्त

पृथिवीमें भ्रमण करताहूया सर्वतीर्थोंमें परमश्रेष्ठ पुष्करतीर्थमें जाताभया इति ॥ ८ ॥

नानावृक्षलतोपेतं श्रेणीबंधनमंडितम् ।
नानाजलचरैर्नित्यं समंतात्परिलोलितम् ॥९॥

सो पुष्करतीर्थ नानाप्रकारके सुंदर वृक्षों और लतायोंकरके चारों तरफसे घिराहूया और पत्थरकी पेडियोंके बंधनसें सुशोभित है तथा नानाप्रकारके मकरआदि जलचर जीवोंकरके सर्वतरफसें वीचमें चलायमान होरहाहै इति ॥९॥

गिरिशृंगत्रयांतःस्थं वेष्टितं वनपर्वतैः ।
रक्तोत्पलैः समाकीर्णं पूर्णनीरमनोहरम् १०

तथा सो पुष्करतीर्थ पर्वतके तीन शृंगोंके वीचमें स्थित है और चारों तरफसें पर्वत और वनोंकरके घिराहूया है और रक्तकमलोंके पुष्पोंसे शोभायमान हो रहाहै तथा पूर्ण निर्मल जलसें भराहूया अतिमनोहर है इति ॥ १० ॥

यत्रागत्य पुरा यज्ञमकरोच्चतुराननः ।
सर्वैर्देवैर्युतः श्रीमाँल्लोकानां हितकारणात् ११

जिस पुष्करतीर्थमें पहले सत्युगमें सर्वदेवता-योंके सहित श्रीमान् ब्रह्माजीने ब्रह्मलोकसे आय करके लोकोंके कल्याणके हितार्थ यज्ञ किया था इति ॥ ११ ॥

तत्राश्रमपदं रम्यं ब्रह्मानंदस्य योगिनः ।
वेदध्वनिभिराघुष्टं नित्यं शास्त्रकथायनम् १२

तिस पुष्करतीर्थमें परमरमणीय एक ब्रह्मानंद-नामक योगीका आश्रम है सो आश्रम नित्यंप्रति वेदपठनपाठनकी ध्वनिसे गुंजित रहता है और उसमें नित्यहि वेदांत आदि शास्त्रोंकी कथा तथा व्याख्यान होते रहते हैं इति ॥ १२ ॥

नानाशिष्यगणोपेतं योगध्याननिकेतनम् ।
यात्रार्थिजनसंघातपरमाह्लादकारणम् ॥१३॥

तथा सो आश्रम अनेक शिष्यगणोंकरके संयुक्त है और योगध्यान करनेयोग्य एकांतस्थान है तथा परदेशी यात्रार्थी लोकोंको विश्रामसे वा दर्शन आदिसे परम आह्लाद देनेवाला है इति॥१३॥

दर्शनार्थं समायातः स राजा तत्र योगिनः ।
श्रुत्वा लोकमुखात्कीर्तिं ब्रह्मानंदस्य सानुगः।

तिस आश्रममें सो प्रतापसिंह राजा लोकोंके मुखसें ब्रह्मानंद योगीकी कीर्ति श्रवण करके अपने सर्व अनुचरोंके सहित दर्शन करनेके लिये जाताभया इति ॥ १४ ॥

संमानितो यथान्यायं योगिनाऽऽसनदानतः ।
कुशलक्षेमप्रश्नेन प्रयोगेणाशिषस्तथा ॥१५॥

सो राजा जब आश्रममें गया तो ब्रह्मानंद योगीने आसन देनेसें और कुशल क्षेम पूछनेसे तथा आशीर्वाद देनेसे उस राजाका रीतिपूर्वक संमान किया इति ॥ १५ ॥

प्रणम्य प्रांजलिर्भूत्वा स्थितः संमुखमादरात् ।
पप्रच्छ विनयोपेतः प्रश्नमेवं विचक्षणः ॥१६॥

तब सो राजा ब्रह्मानंदयोगीको प्रणाम करके हाथ जोडकर संमुख बैठ गया और खुशीआनंदकी बातचीत होनेके पीछे आदरपूर्वक इस प्रकार प्रश्नको पूछता भया इति ॥ १६ ॥

राजोवाच ।

किं कर्तव्यं मनुष्येण प्राप्य जन्म महीतले ।
एतन्मे ब्रूहि योगीन्द्र प्रथमं बोधहेतवे ॥१७॥

राजा बोले हे योगीन्द्र ! पृथिवीमें पुरुषको मनुष्यजन्मको प्राप्त होकर क्या कर्तव्य करना चहिये सो भली प्रकार बोध होनेकेलिये प्रथम मेरेको इस वार्ताका निर्णय कथन करो इति ॥ १७ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

कर्तव्यानि बहून्यत्र संति राजन्सहस्रशः ।
लौकिकानि मनुष्याणां शास्त्रोक्तानि तथैव च ।

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन् ! इसलोकमें मनुष्योंके प्रति लौकिक और शास्त्रोक्त बहुतसे हजारों प्रकारके कर्तव्य विधान कियेहूये हैं इति ॥१८॥

तत्र यत्सारभूतं स्यात् सर्वत्रात्महितावहम् ।
सुकरं दोषहीनं च तत्कर्तव्यं समाचरेत् ॥१९॥

परंतु तिन सर्व कर्तव्योंमें जो सबका सारभूत होवे और सर्व जगा लोक परलोकमें अपना हितकारक होवे तथा सुकर और सर्व दोषोंसें रहित होवे उसी कर्तव्यका बुद्धिमान् पुरुषको आचरण करना योग्य है इति ॥ १९ ॥

अब मनुष्यको क्या क्या कर्त्तव्य करना चहिये सो आदिसे लेकर अंतपर्यंत क्रमसे निरूपण करते हैं।

प्राप्य जन्म मनुष्येषु विशेषेण द्विजातिषु ।
स्मृत्युक्तैर्वैदिकैश्चापि संस्कारैः संस्कृतः शुचिः।

पुरुषको चहिये कि मनुष्यजन्मको प्राप्त होकर तहांभी विशेषकरके द्विजातिकुलमें अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कुलमें जन्म पायकरके प्रथम स्मृति-विहित अथवा वेदोक्त यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंसें युक्त होकर शुद्ध होवे इति ॥ २० ॥

बाल्ये वयसि विद्यायाः कुर्यादभ्यासमादरात्।
लौकिकं वैदिकं चापि ज्ञानमासादयेत्सुधीः २१

संस्कारोंसें शुद्ध होकरके पीछे बुद्धिमान् पुरुषको चहिये कि बाल्यावस्थामें आदरपूर्वक प्रथम विद्याका अभ्यास करे और उस विद्यासें लौकिकोपयोगी तथा वेदशास्त्रोपयोगी दोनों प्रकारके ज्ञानका भलीप्रकारसें संपादन करे इति २१

गुरुमातोष्य यत्नेन सेवया द्रविणेन वा ।
गृह्णीयात्सुस्थिरोभूत्वा विद्यामात्महितैषिणीम्

द्रव्यसें अथवा शरीरसेवासे गुरुको यत्नपूर्वक प्रसन्न करके उनसे अपने आत्माकेहित करनेहारी विद्याका धीरेधीरे ग्रहण करना चहिये इति ॥२२॥

विद्या हि परमं चक्षुर्लोकालोकार्थदर्शकम् ।
नहि विद्यासमं लोके मित्रं सुखकरं परम्॥२३॥

क्योंकि विद्याहि लोक तथा परलोकके पदार्थोंके देखनेमें वा जाननेमें परम सुंदर नेत्ररूप है तथा विद्याके समान जगत्में इस जीवका कोई दूसरा हितकारी मित्र नहि है इति ॥ २३ ॥

दरिद्रमपि विद्वांसं पूजयंतीह भूमिपाः ।
विद्याहीना न शोभंते सर्वक्लेशसहा नराः२४

विद्यावान् पुरुष जो दरिद्रीभी होवे तो उसका वडेवडे राजालोकभी आदरसत्कार करते हैं और विद्यासें हीन पुरुष जगत्में कवी शोभाको प्राप्त नहि होते और सर्वदाकाल सर्वप्रकारसें क्लेशोंको प्राप्त होते रहतेहैं इति ॥ २४ ॥

विद्यां परिसमाप्यांते गुरवे दीर्घदक्षिणाम् ।
दत्त्वा प्रतिनिवर्तेत गृहं सर्वार्थसाधनम् ॥२५॥

विद्याका भलीप्रकारसें पूर्ण अभ्यास करके पीछे विद्यागुरुको अपनी शक्तिके अनुसार वहुत भारी दक्षिणा देकर सर्व कार्योंके साधनभूत अपने घरको लौटकर आवे इति ॥ २५ ॥

यौवने सुखभोगार्थं संतानार्थं तथैव च ।
ऋणत्रयापनुत्यर्थं गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ २६ ॥

और यौवनावस्थामें सांसारिक सुख भोगनेके लिये और संतानउत्पत्तिकेलिये तथा देवऋण पितृऋण ऋषिऋण इन तीनप्रकारके ऋणको चुकानेकेलिये गृहस्थाश्रमको धारण करना चहिये इति ॥ २६ ॥

षोडशाधिकवर्षो वा विंशत्यधिकवर्षकः ।
स्वजनानुमतेनैव कुर्याद्दारपरिग्रहम् ॥ २७ ॥

और सोला वर्षकी उमरासें ऊपर अथवा वीस वर्षकी उमरासें ऊपर अपने मातापिताआदि कुटुंबियोंकी अनुमतिसें विवाह करना चहिये इति २७

नाल्पे वयसि कुर्वीत योषित्संगं तु कर्हिचित् ।
तेन क्षीणबलो नायुर्दीर्घमाप्नोति मानवः २८

सोला वा वीस वर्षकी उमरासे पहले छोटी उमरामें स्त्रीका संग कवी नहि करना चहिये, क्योंकि छोटी उमरामें स्त्रीसंग करनेसे शरीरके वलकी क्षीणता होनेसे पुरुपकी उमरा वडी नहि हो सकती है इति ॥ २८ ॥

विन्देत सदृशीं भार्यां स्वजात्याचारचेष्टितैः।
सुंदरीमपि जात्यन्यां नोद्वहेदंगनां कचित् २९

अपने कुल जाति आचार विहारसे मिलती हुई स्त्रीसें विवाह करना चहिये दूसरी जातिकी जो कदाचित् अतिसुंदर स्त्रीभी होवे तो उससें विवाह नहि करना चहिये इति ॥ २९ ॥

कृतदारः कुटुंवस्य पोषणार्थं समंततः ।
द्रव्यस्योपार्जने यत्नं कुर्याद्विधिसमन्वितम् ३०

और विवाह होनेके पीछे कुटुंवके पालनपोप-णकेलिंये सर्वतरफसें द्रव्यसंग्रह करनेके लिये विधिपूर्वक यत्न करना चहिये इति ॥ ३० ॥

जीवहिंसान्वितां वृत्तिं भूतद्रोहमयीं पुनः ।
नैव कांक्षेत्कदाचित्तु तथा लोके विगर्हिताम् ३१

जिस जीविकामें किसी जीवकी हिंसा होती होवे वा किसी भूतप्राणीको दुःख पहुंचता होवे तथा जो लोकोंमें निंदित होवे तो उस जीविकासें द्रव्यका संग्रह कवी नहि करना चहिये इति ॥३१॥

सर्वेषामपि जीवानां जलस्थलनिवासिनाम् ।
पोषणं कुरुते नित्यं जगदीशो निरंतरम् ॥३२॥
किमर्थं पापिकां वृत्तिं मनुजोऽत्र समाश्रयेत् ।
चिंतयन्नीश्वरं नित्यं कुर्यात्कार्यं यथोचितम् ३३

जब जलमें और पृथिवींमें रहनेहारे सर्व जीवोंका परमेश्वर सर्वदाकाल निरंतर पोषण करता है तो बुद्धिमान् पुरुषको मनुष्यजन्ममें पापयुक्त जीविका क्यों करनी चहिये अर्थात् कवी नहि करनी चहिये किंतु केवल ईश्वरका चिंतन करतेहूये यथायोग्य उचित व्यवहारको करना चहिये इति ॥ ३२॥ ३३ ॥

वृत्तिलोभान्न गृह्णीयात् परधर्मं कदाचन ।
न चापि दुर्जनैः सार्कं निवसेल्लोभकारणात्३४

किंच जीविकाके लोभसें दूसरे धर्मको कवी नहि ग्रहण करना चहिये तथा द्रव्यलाभके लोभसें दुष्ट नीच पुरुषोंका संग वा सहवासभी नहि करना चहिये इति ॥ ३४ ॥

संतोषं परमास्थाय स्वधर्मनिरतः सुधीः ।
कुटुंबपोषणं कुर्यात् यथाकालं यथाक्रमम् ३५

किंतु परमसंतोषमें स्थिर रहकरके बुद्धिमान् पुरुषको देश काल समयके अनुसार कुटुंबका पोषण करना चहिये इति ॥ ३५ ॥

पितुः शुश्रूषणं नित्यं मातृशुश्रूषणं पुनः ।
कुर्यादनन्यभावेन गुरोः शुश्रूषणं तथा ३६

और सर्व कुटुंबका पोषण करतेहूये अपने पिता माता तथा गुरुकी विशेष करके अनन्य-चित्तसें भावभक्तिपूर्वक सेवा शुश्रूषा करनी चहिये इति ॥ ३६ ॥

शुश्रूषणं हि वृद्धानां परं कल्याणकारणम् ।
गृह्णीयादाशिषस्तेषां नित्यमात्महिते रतः ३७

क्योंकि वृद्ध पुरुषोंकी सेवा शुश्रूषा करनेसें

परम कल्याणकी प्राप्ति होवेहै इसलिये अपने आत्माका हित चाहनेवाले पुरुपको वृद्धोंकी सेवासें नित्यप्रति उनके आशीर्वादोंको ग्रहण करना चहिये इति ॥ २७ ॥

अव प्रसंगसें स्त्रियोंके कर्तव्योंकाभी दो श्लोकों-करके निरूपण करते हैं ।

नारीणां भर्तृशुश्रूषा तद्बंधुष्वनुकूलता ।
गृहकृत्येषु कौशल्यं वालानां रक्षणं तथा ३८

और स्त्रियोंको चहिये कि अपने पतिकी तन-मनसें प्रीतिपूर्वक सेवा करें और पतिके माता पिता भाई आदि कुटुंवियोंकेभी अनुकूल रहें अर्थात् उन-कीभी आज्ञामें रहें और रसोई सीना कसीदा आदि घरके कामोंमेंभी चतुराई रखें तथा वाल-वच्चोंका भलीप्रकारसें पालन पोषण करें इति ॥३८॥

पत्युश्चानुमतेस्तासां धर्माचरणमिष्यते ।
यथा जपस्तपो दानं योगस्तीर्थाटनादिकम् ३९

तथा पतिकी आज्ञा लेकर जप तप दान योगा

भ्यास और तीर्थयात्रा आदि धर्मके कामभी तिनको अवश्य करने चहिये इति ॥ ३९ ॥

न कुर्यादसतां संगं सतां संगं समाश्रयेत् ।
संगादेव हि जायंते सर्वे दोषा गुणास्तथा ४०

किंच बुद्धिमान् पुरुषको असत् पुरुषोंका संग कवी नहि करना चहिये और सत्पुरुषोंका सर्वदाकाल आश्रय लेना चहिये क्योंकि कुसंगसें सर्व प्रकारके दोष उत्पन्न होतेहैं और सत्संगसें सर्व प्रकारके गुण उत्पन्न होतेहैं इति ॥ ४० ॥

मद्यपानं च द्यूतं च परस्त्रीगमनं तथा ।
मांसस्य भोजनं चापि यत्नतः परिवर्जयेत्४१

और मदिरापान करना जूवा खेलना पराई स्त्रीका गमन करना और मांसका भोजन करना इन वातोंका वडे यत्नसें परित्याग करना चहिये अर्थात् इतने काम कवी नहि करने चहिये इति ॥ ४१ ॥

कुर्वीत सात्त्विकाहारं विहारं चापि युक्तितः ।
प्रियः स्यात्सर्वभूतानां पशुपक्षिनृणां सदा ४२

और सर्वदाकाल सात्त्विक आहारका भोजन करना चहिये और सर्व संसारके कार्यव्यवहार युक्तिसें सोच समझकर करने चहिये तथा मनुष्य पशु पक्षी आदि सर्व जीवोंके साथ प्रीतिभावसें वर्तना चहिये इति ॥ ४२ ॥

प्रातःकाले सदा संध्यां कुर्यान्नित्यमतंद्रितः
जपं चापि विशेषेण सायंकाले तथैव च ॥४३॥

और प्रातःकाल स्नान करके नित्यंप्रति आलस छोडकरके संध्याकर्म करना चहिये तथा गायत्री वा ओंकारका जप विशेषकरके करना चहिये तैसे-हि सायंकालमेंभी संध्या वा जप करना चहिये इति ॥ ४३ ॥

कुर्यादतिथिसत्कारं जलपानाशनादिभिः ।
अभ्यागतं तथा काले पूजयेच्च यथोचितम् ४४

तथा अपने घरमें आये अतिथिमहमानका जलपान भोजन बिस्तर आदिसें सत्कार करना चहिये तथा भोजनसमयमें प्राप्त हूये अभ्यागत-

काभी यथायोग्य भोजन आदिसें संमान करना चहिये इति ॥ ४४ ॥

देवतातिथिशेषेण भुंजानो नैव लिप्यते ।
अन्नपाकजदोषेण दुष्प्रतिग्रहणेन च ॥ ४५ ॥

क्योंकि देवताका नैवेद्य करके और अतिथिको भोजन देकरके भोजन करनेवाला पुरुष अन्न पकानेके दोषसें और बुरे धनके वा दान लेनेके दोषसें लिपायमान नहि होता है इति ॥ ४५ ॥

देवतापूजनं कुर्यात्सततं प्रतिमादिषु ।
देवानां हि प्रसादेन मर्त्यः सौख्यमवाप्नुयात् ४६॥

तथा ब्रह्मा विष्णु शिव इन्द्र आदि देवतायों-काभी होम यज्ञ आदिसें वा प्रतिमायोंद्वारा नित्यंप्रति पूजन करना चहिये क्योंकि देवतायोंकी प्रसन्नतासें मनुष्यको सर्व प्रकारके सुखोंकी प्राप्ति होवे है इति ॥ ४६ ॥

परोपकारं कुर्वीत शरीरेण धनेन च ।
नैव स्वार्थपरत्वेन भाव्यं सर्वत्र सर्वदा ॥ ४७ ॥

और अपने शरीर वा धन करके सर्वदाकाल

दूसरे जीवोंका परोपकार करना चहिये केवल सब जगा अपने स्वार्थपरायणहि पुरुषको नहि होना चहिये इति ॥ ४७ ॥

सर्वकार्येषु सर्वत्र सत्यभाषणमाचरेत् ।
नास्ति सत्यसमं पुण्यं नानृतात्पातकंपरम्॥४८॥

तथा सबजगा सर्व कार्योंमें सर्वदाकाल सत्यभाषण करना चहिये क्योंकि सत्यके समान दूसरा कोई पुण्य नहि है और झूठके समान दूसरा पाप नहि है इति ॥ ४८ ॥

वृद्धत्वेत्वथ संप्राप्ते त्यक्त्वा विषयवासनाम् ।
ममत्वं च कुटुंबस्य नित्यं धर्मपरो भवेत्॥४९॥

तथा वृद्धअवस्था होनेसें सांसारिक विषयोंकी वासनायोंका और कुटुंब परिवारकी ममताका परित्याग करके नित्यंप्रति धर्मके कार्योंमें तत्पर होना चहिये इति ॥ ४९ ॥

धर्म एव परं मित्रं परलोके सहायकम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्धर्मस्य संग्रहम्॥५०॥

क्योंकि एक धर्महि इस जीवका परलोकमें स-

हायता करनेवाला परममित्र है इस लिये सर्व प्रयत्नसें धर्मका संग्रह करना चहिये इति ॥ ५० ॥

विद्वत्समागमं कुर्यात्सच्छास्त्रश्रवणं तथा।
ईश्वराराधनं चापि कुर्यान्नित्यं समाहितः॥५१॥

तथा अच्छे अच्छे विद्वान् पंडितलोकोंका वा साधुमहात्मापुरुषोंका नित्यंप्रति संग करना चहिये और उनके मुखसें वेदांतआदि उत्तमउत्तम शास्त्रोंका श्रवण करना चहिये तथा तिसके साथसाथ ईश्वरकाभी नित्यंप्रति निरंतर आराधन करना चहिये इति ॥ ५१ ॥

योगाभ्यासपरो नित्यं सांख्यतत्त्वविशारदः।
ब्रह्मज्ञानमनुप्राप्य गच्छेन्मोक्षपदं परम्॥५२॥

और अष्टांगयोगका अभ्यास करतेहूये सांख्यतत्त्वकाभी विचार करना चहिये तथा अंतमें ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होकरके परम मोक्ष पदको प्राप्त होना चहिये इति ॥ ५२ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां मनुष्यकर्त्तव्यनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

धर्मस्य लक्षणं किं स्याद्भगवन्कथयाधुना ।
कियंतस्तस्य भेदाश्च भवंति विदुषां वर ॥ १ ॥

राजा वोले हे सर्वविद्वानोंमें श्रेष्ठ भगवन्! आपने कहा कि मनुष्यको अवश्य धर्मका संग्रह करना चहिये सो तिस धर्मका क्या लक्षण है और तिसके कितने प्रकारके भेद हैं सो कृपाकरके अब मेरेको कथन करो इति ॥ १ ॥

को धर्मः सर्वधर्माणां श्रेष्ठः सेव्यो मयाऽनिशम्।
कथं च जायते धर्मः कृपया वद मे विभो ॥२॥

तथा हे विभो! सर्वधर्मोंसें कौनसा धर्म श्रेष्ठ है जिसका मैं सेवन करूं और किस प्रकारसें धर्मकी उत्पत्ति होवे है सो कृपा करके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ २ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि धर्मतत्त्वं सनातनम् ।
यच्छ्रुत्वा संशयं सर्वं हित्वा सुखमुपैष्यसि ॥३॥

ब्रह्मानंदजी वोले हे राजन्! मैं तेरेको धर्मका पुरातन रहस्य कहताहूं सो तूं श्रवण कर, जिसके श्रवण करनेसे तूं सर्वसंशयोंसें रहित भया परम सुखको प्राप्त होवेगा इति ॥ ३ ॥

धारणार्थे महाराज धात्वर्थः संप्रवर्त्तते ।
धारणात्सर्वभूतानां धर्मः प्रोक्तो महर्षिभिः ४

हे महाराज! धृञ्धातु धारणअर्थमें प्रवृत्त होता है उससें धर्मशब्द वनता है सो सर्वभूतप्राणियोंको धारण करनेसें पहलेके महर्षिलोकोंने उसका नाम धर्म कथन किया है इति ॥ ४ ॥

धर्मः संसेवितो जंतूनूर्ध्वं नयति निश्चितम् ।
स्वर्गादिकेषु लोकेषु धारणं तत्प्रचक्षते ॥ ५ ॥

क्योंकि धर्मके सेवन करनेसें जीवोंकी ऊपर स्वर्ग आदिलोकोंमें गति होवेहै सो ऊपरको उठालेंनेको धारण करना कहतेहैं सो धर्मसें ऊपरको जानेसें धर्मशब्दका अर्थ धारण करना होवे है इति ॥५॥

एकोपि धर्मो मार्गाणां भेदाद्बहुविधो मतः ।
लोकानां रुचिभेदेन मार्गभेदः प्रजायते ॥६॥

हे राजन्! यद्यपि धर्म एकहि प्रकारकाहै तथापि उसके आचरण करनेके मार्ग अनेक प्रकारके होनेसे धर्मकेभी वहुत प्रकारके भेद होतेहैं और उन वहुत भेदोंके होनेमें लोकोंकी भिन्नभिन्न रुचिहि कारण होवेहै अर्थात् लोकोंकी रुचिके अनुसार धर्मके वहुत मार्ग होजातेहैं इति ॥ ६ ॥

मार्गाणामुच्चनीचत्वमाचार्यमतिभेदतः ।
लोके प्रजायते नूनं यथा ज्ञानं तथा मतम् ॥७॥

और जो कोई धर्मका मार्ग उत्तम है कोई मध्यम है और कोई कनिष्ठ है इसका कारण धर्मके प्रवृत्त करनेहारे आचार्योंकी बुद्धिकी न्यूनता वा अधिकता है अर्थात् जितना जिस आचार्यकी वुद्धिका ज्ञान होताहै तो वो उसी प्रकारका मत प्रचार कर देताहै इति ॥ ७ ॥

वर्त्तंते श्रद्धया तत्र जनास्तदनुयायिनः ।
लभंते च फलं सर्वे स्वस्वधर्मानुसारतः ॥८॥

और अपनेअपने आचार्यके मतके पीछे उनके शिष्यलोक प्रवृत्त होतेहैं और वो अपनेअपने

धर्मके अनुसार लोक और परलोकमें फलको प्राप्त होतेहैं इति ॥ ८ ॥

सर्वेषामेव धर्माणां श्रेष्ठं धर्मं महीपते ।
जीवरक्षणमेवाहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ९ ॥

हे महीपते पृथिवीपति राजन् ! सर्वजीवोंका जो रक्षण करना है सोई सर्व धर्मोंसें श्रेष्ठ धर्म तत्त्वदर्शी मुनिलोकोंने कथन किया है इति ॥९॥

जीवानां रक्षणं चैव तथैव परिपालनम् ।
साहाय्यकरणं तेषां परो धर्मो मतो हि मे १०

हे राजन् ! जीवोंका रक्षण करना और पालन करना तथा तिनकी सर्वप्रकारसें सहायता करनी मेरी संमतिमेंभी येहि सर्वधर्मोंसें परमधर्म प्रतीत होताहै इति ॥ १० ॥

मनुष्याणां पशूनांच पक्षिणां कृमिसंज्ञिनाम् ।
शुश्रूषणेन धर्मस्य समुत्पत्तिः प्रजायते ॥ ११ ॥

मनुष्योंकी और पशुवोंकी पक्षियोंकी तथा कृमियोंकी सेवा शुश्रूषा करनेसे धर्मकी उत्पत्ति होवेहै अर्थात् धर्म वा अधर्म और किसी वस्तुसें

उत्पन्न नहि होता केवल दूसरे जीवोंको सुख देने-
सें धर्मकी उत्पत्ति होवेहै और दुःख देनेसें पापकी
उत्पत्ति होवेहै इति ॥ ११ ॥

शुश्रूषणं तु कर्त्तव्यं यथाशक्ति यथाक्रमम् ।
धर्मसंचयहेत्वर्थं नित्यमेव निरंतरम् ॥ १२ ॥

इसलिये धर्मसंग्रह करनेकेलिये अपनी शक्तिके
अनुसार जैसे वनसके विवेकी पुरुषको जीवोंको
सुख पहुंचानेके लिये उनकी सेवा शुश्रूषा नित्यं-
प्रति करनी चहिये इति ॥ १२ ॥

राजोवाच ।

केन त्वत्र प्रकारेण सर्वधर्मविदांवर ।
शुश्रूषणं हि भूतानां भवतीति वदाधुना १३

राजा बोले हे सर्वधर्मके रहस्य जाननेहारोंमें
श्रेष्ठ भगवन्! आपने कहा कि जीवोंकी सेवा करके
धर्मका संग्रह करना चहिये सो जीवोंकी सेवा
किसप्रकारसे होतीहै सो कृपा करके मेरेको कथन
करो इति ॥ १३ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

प्रथमं मनुजानां तु कथयामि महीपते ।
शुश्रूषणविधानं ते यथाक्रममनुत्तमम् ॥१४॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे महीपते! पहले मैं तेरेको ानुष्योंकी सेवा करनेका उत्तम प्रकार कथन रताहूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ १४ ॥

धनिनः सुखिनश्चैव ये च लोके यशस्विनः ।
तैरनेन विधानेन कर्त्तव्यो धर्मसंचयः ॥१५॥

इस लोकमें जो धनवान् वा सर्वप्रकारसे सुखी वा यशकी इच्छावाले पुरुष हैं तो तिनको पहले इसप्रकारसें धर्मका संग्रह करना चहिये इति ॥ १५ ॥

प्रथमं भूप कार्याणि विश्रामार्थमनेकधा ।
दुर्गस्थानेषु सर्वत्र स्थानानि पथिचारिणाम् १६

हे भूप! प्रथम तो तीर्थ आदिकोंके कठिन मार्गोंमें मार्गमें चलनेहारे मुसाफिरोंके विश्राम करनेकेलिये वडेवडे धर्मशाला आदि स्थान वन-वाने चहिये इति ॥ १६ ॥

वाप्यो मिष्टजला मार्गे कूपाश्चापि मनोहरा: ।
सरांसि चातिरम्याणि निर्मातव्यानि सर्वत:॥

तथा मीठे जलकी बावलियां सुंदर कूये और वडेवडे रमणीय तालाव सरोवर सव जगा मार्गोंमें मनुष्योंके जलपान करनेके लिये खुदवाने वनाने चहिये इति ॥ १७ ॥

तरवोतिघनच्छाया: फलवंत: समंतत: ।
रोपणीयाश्च पांथानां सुखार्थं धर्मकांक्षिणा १८

तथा धर्मसंग्रह करनेकी इच्छावालेको सव जगा मार्गोंमें मुसाफिरोंके आराम करनेके लिये सघनछायावाले वा सुंदर फलोंवाले वडेवडे वृक्ष रोपण करने चहिये इति ॥ १८ ॥

विद्याशाला विधातव्या वेदाध्ययनपूर्विका: ।
तथौषधालयांश्चापि कुर्याल्लोकहितावहान् १९

तथा वेदपठनपाठनके सहित संस्कृत आदि विद्याशाला और नानाप्रकारके औषधालयभी लोकोंके हितकेलिये वनाने चहिये इति ॥ १९ ॥

अन्नक्षेत्राणि तीर्थेषु प्रपा ग्रीष्मे विशेषतः ।
शीतकाले च वस्त्राणां दानं कुर्यादुदारधीः २०

तथा उदारबुद्धिवाले पुरुषको तीर्थस्थानोंमें सव जगा अन्नक्षेत्र लगाने चहिये और उष्णकालमें विशेषकरके मार्गोंमें सव जगा जलकी प्याव लगानी चहिये तथा शीतकालमें गरीव लोकोंको वस्त्रोंका दान भी करनाचहिये इति ॥२०॥

वृद्धानामसमर्थानां रोगिणां च विशेषतः ।
नारीणां भर्तृहीनानां रिक्तानां वित्तबांधवैः२१

मातृपितृवियुक्तानां शिशूनां दीनचेतसाम् ।
अंधानां वधिराणां च दरिद्राणां तथैवच २२

साहाय्यं सर्वदा कार्यं शरीरेण धनेन च ।
तेन वृद्धिर्विशेषेण भवेद्धर्मस्य निश्चितम् २३

तथा अतिवृद्ध और असमर्थ वा रोगियोंकी तथा पतिसें वा धनसें और कुटियोंसें रहित स्त्रियोंकी और मातापितासें हीन छोटे वालकोंकी तथा अंधे और वहिरोंकी तथा धनसें हीन दरिद्री दुखी पुरुषोंकी शरीरकरके वा धनकरके सर्वदाकाल सर्व

प्रकारसें सहायता करनी चहिये तो तिससें निश्चय करके धर्मकी वृद्धि होती है इति ॥२१।२२।२३॥

इस प्रकार मनुष्योंकी सेवाका प्रकार निरूपण करके अब पशुवोंकी सेवाका प्रकार कथन करते हैं।

पशूनां शृणु राजेन्द्र शुश्रूषणमतः परम् ।
यस्य ज्ञानाद्भवेन्नूनं धर्मलाभो निरंतरम् ॥२४॥

हे राजेन्द्र ! अब पशुवोंकी सेवाका प्रकार श्रवणकर जिसके जाननेसें निश्चय करके धर्मका लाभ होवे है इति ॥ २४ ॥

पशावो ननु मूकत्वादात्मनः सुखदुःखताम् ।
वक्तुं नैव समर्थाः स्युर्दयनीयास्ततोहि ते॥२५॥

प्रायः सर्व पशु गुंगे होनेसें अपने सुख वा दुःखकी वात किसीसें कह नहि सकते इसलिये उनके ऊपर मनुष्योंको अवश्य दया करनी चहिये इति ॥ २५ ॥

ईश्वरस्य सुताः सर्वे मनुष्यपशुपक्षिणः ।
सर्वेषु बंधुभावेन वर्त्तितव्यमतो बुधैः ॥२६॥

मनुष्य पशु और पक्षी आदि सवी जीव ईश्वरके पुत्र हैं तो बुद्धिमान् पुरुषको तिन सर्वमें अपने भाई वा वंधुभावसें वर्ताव करना चहिये अर्थात् सर्व जीवोंको अपने भाई वरावर समझकर सवसे प्रीतिभाव रखना चहिये किसीको नीच समझकर घृणा नहि करनी चहिये इति ॥ २६ ॥

आत्मनस्तु सुखं दुःखं यथा येन प्रजायते ।
तथैव तेन विज्ञेयं सर्वत्र पशुपक्षिषु ॥ २७ ॥

जिसप्रकार जिस वातसें अपनेको सुख वा दुःख होताहै उसीप्रकार उसी वातसें सर्व जगा पशु पक्षी आदि जीवोंमें वरावर सुख वा दुःख समझलेना चहिये इति ॥ २७ ॥

परेषां दुःखदानं हि पापमित्युच्यते नृप ।
सुखदानंच धर्मः स्यात्ततो दुःखं विवर्जयेत् २८

हे नृप ! दूसरे जीवोंको जो दुःख देना है वोही पाप कहिये है और जो दूसरे जीवोंको सुख देना है सो धर्म कहलाताहै इसलिये किसी जीवकोभी दुःख नहि देना चहिये इति ॥ २८ ॥

बंधनं नैव कुर्वीत पशूनां वनचारिणाम् ।
स्वतंत्राया गतेस्तेषां रोधनात्पातकं भवेत् २९

इसलिये वनमें विचरणेहारे पशुवोंको बंधन नहि करना चहिये क्योंकि उनकी स्वतंत्र विचरणे-की गतिको रोकनेसें पापकी प्राप्ति होतीहै इति२९

हिंसा हि परमं पापं सर्वशास्त्रेषु निश्चितम् ।
पशूनां हिंसनं तस्मात् त्याज्यं सर्वत्र सर्वदा ३०

किंच जीवहिंसा हि सर्वधर्मशास्त्रोंमें बडाभारी पाप निश्चयकरके कथन किया है इसलिये किसी पशुकी हिंसा नहि करनी चहिये इति ॥ ३० ॥

सामर्थ्यादधिकं तेषु नैव भारं वहेत्कचित् ।
नातिदूराध्वगमनं कुर्यात्तैर्धर्मतत्त्ववित्॥३१॥

तथा पशुवोंकी सामर्थ्यसें अधिक तिनपर भार कबी नहि लादना चहिये और मर्यादासे अधिक तिनपर चढकर अतिदूर मार्गभी नहि जाना चहिये इति ॥ ३१ ॥

स्वल्पापराधे वा तेषां न कुर्याद्दंडमुत्तमम् ।
वर्षायामातपे शीते नच तान् बंधयेद्बहिः ३२

तथा पशुवोंके थोडेसे अपराध होनेपर तिनको अधिक दंड नहि देना चहिये तथा वर्षामें वा शीतकालमें वा तेज धूपमें तिनको मैदानमें नहि वांधना चहिये अर्थात् छायामें सुरक्षित स्थानमें वांधना चहिये इति ॥ ३२ ॥

चरतां वनदुर्गेषु पर्वतेषु यतस्ततः ।
निवारणं न कर्त्तव्यं गवादीनां कदाचन ॥३३॥

तथा गौ वकरी आदि पशु जो वन वा पर्वतों वा जंगलोंमें जहांतहां चरते फिरते होवें तो उनको विनाप्रयोजन कवी निवारण नहि करना चहिये इति ॥ ३३ ॥

तृणघासान्नपानाद्यैरुपचारैरशेषतः ।
आनुकूल्यं विधातव्यं सर्वदा धर्ममिच्छता ३४

तथा धर्मसंचय करनेकी इच्छावालेको हरे तृण घास अन्न और जलपान आदि उपचारों- करके तिनकी सर्व प्रकारसे अनुकूलता करनी चहिये इति ॥ ३४ ॥

अयं निजः परो वेति हित्वा मनसि कल्पनाम् ।
सर्वेषां पशुजातीनां शुश्रूषणमुपाचरेत् ॥३५॥

यह पशु मेरा है यह पराया है ऐसी कल्पनाको मनसें छोडकर सर्व पशुजातियोंकी बराबर सेवा शुश्रूषा करनी चहिये इति ॥ ३५ ॥

पक्षिणामपि राजेन्द्र शृणु शुश्रूषणं वरम् ।
यत्कृत्वा सततं धीमान् सकलं भद्रमश्नुते ३६

हे राजेन्द्र ! अब पक्षियोंकी सेवा करनेकाभी श्रेष्ठ प्रकार श्रवण करो जिसके करनेसे बुद्धिमान् पुरुष सर्व प्रकारके कल्याणको प्राप्त होताहै इति ॥ ३६ ॥

पक्षिणोऽन्नाशनाः केचित्केचिच्च कणभोजिनः ।
तेभ्यः काले यथायोग्यमशनं प्रतिपादयेत् ३७

कोई पक्षी तो अन्न खानेवाले होतेहैं और कोई पक्षी कण चुगतेहैं सो तिन सर्वको समयपर जैसा जिसका आहार होवे वैसाहि देना चहिये इति ॥ ३७ ॥

काकादिभ्यस्तु पक्वान्नं नित्यमेव समर्पयेत् ।
हर्म्योपरि तथा शुद्धस्थंडिलेषु विधानतः ३८

कौवे चील आदि पक्षियोंको तो नित्यंप्रति घरकी छत्तोंपर वा सफा चौंतरोंपर पकाहूया रोटी चावल आदि नानाविध अन्न विधिपूर्वक देना चहिये इति ॥ ३८ ॥

कणान्कपोतमुख्येभ्यः खगेभ्यो वितरेद्बुधः ।
गृहोपरिष्ठभागेषु जंगलेषु च वा सदा ॥३९॥

तथा कवूतर मोर आदि पक्षियोंके लिये घरकी छत्तोंपर वा जंगलोंमें सर्वदाकाल जवार मक्की वाजरा आदि अन्नकणोंकों डालना चहिये इति ३९

जलदोलाश्च वृक्षेषु सर्वतो विनियोजयेत् ।
पक्षिणां तोयपानार्थं प्रत्यहं परिवर्त्तयेत् ॥४०॥

तथा पक्षियोंके पानी पीनेके लिये सर्वजगा वृक्षोंमें जलके भरेहूये कूंडे लटकाने वांधने चहिये और उनमें नित्यंप्रति जल वदलतेरहना चहिये इति४०

बधश्च बंधनं तेषां सर्वथा परिवर्जयेत् ।
स्वयं तथान्यहस्तात्तानतियत्नेन मोचयेत् ॥४१॥

तथा पक्षियोंको मारणा वा तिनको पिंज-

रोंमें बंधन नहि करना चहिये और जो कोई दूसरे पुरुषने किसी पक्षीको पकडलिया होवे तो उसके पाससेंभी परिश्रम करके उसको छुडादेना चहिये इति ॥ ४१ ॥

वृक्षांश्च रक्षयेत्पूर्वानन्यांश्च प्रतिरोपयेत् ।
फलिनोऽथ लताश्चापि वर्द्धयेन्नगरे वने ॥४२॥

तथा पक्षियोंके निवास करनेकेलिये पहलेके पुराणे वृक्षोंको जल देने आदिसे रक्षा करनी चहिये और फिर नये फलदार वृक्ष तथा सघन लतायोंको नगरोंमें वा जंगल वनोंमें रोपण करना चहिये इति ॥ ४२ ॥

क्षेत्रेषु चरतां तेषां वारणं न कदाचन ।
कार्यं पाषाणघाताद्यैर्धर्मसंचयकांक्षिणा॥४३॥

तथा धर्मके संचय करनेकी इच्छावाले पुरुषको अन्नके खेतोंमें चरते हूये पक्षियोंको गोफन आदि पत्थर फेंककरके कबीभी हटाना नहि चहिये इति ॥ ४३ ॥

एवं कीटपतंगादिसर्वजीवेषु सर्वदा ।
प्रीतिभावेन वर्त्तेत भ्रातृबुद्ध्या निरंतरम् ४४

इसी प्रकार औरभी जो कीट पतंग आदि जीव हैं तिन सर्वके साथभी प्रीतिभावसें वर्त्तना चहिये और सबको अपने भाईबंधुके समान समझना चहिये इति ॥ ४४ ॥

पुत्राणां रक्षणाद्यद्वत्पितुस्तुष्टिः प्रजायते ।
जीवानां रक्षणात्तद्वदीश्वरः परितुष्यति ॥४५॥

जैसे पुत्रोंकी रक्षा करनेसें उनके पिताकी प्रसन्नता होवे है तैसेहि ईश्वरके पुत्ररूप जीवोंकी सेवा शुश्रूषा वा रक्षा करनेसें ईश्वरकी प्रसन्नता होतीहै इति ॥ ४५ ॥

ईशतोषादशेषेण पापदोषैर्विमुच्यते ।
सर्वान्कामानवाप्यांते जनः कैवल्यमश्नुते ४६॥

और ईश्वरकी प्रसन्नता होनेसें इस पुरुषके सर्व पापदोष छूटजातेहैं और इस लोकमें सो मनोवांच्छित सर्व कामनायोंको प्राप्त होकरके अंतकालमें कैवल्य मोक्षपदको प्राप्त होवेहै इति ॥ ४६ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां जीवरक्षाधर्मनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

यद्येवं सर्वभूतेषु दयाधर्मः परो मतः ।
क्षत्रियाणां कथं युद्धे हिंसा प्रोक्ता मनीषिभिः १

राजा बोले हे भगवन्! आपने कहा कि सर्व भूतप्राणियोंमें दयाभाव रखनाहि परम धर्म है तो फिर धर्मशास्त्रोंमें क्षत्रियोंको युद्धमें हिंसा करना क्यों लिखा है इति ॥ १ ॥

दंडदानं च चौरेषु किमर्थं प्रतिपादितम् ।
यज्ञेषु बलिदानं च पशूनां विहितं कथम् ॥२॥

तथा चोरोंको वा दोषियोंको दंड देना क्यों कथन किया है और यज्ञोंमें पशुवोंका बलिदान करना क्यों विधान किया है इति ॥ २ ॥

एतं मे संशयं योगिन्निराकर्त्तुमिहार्हसि ।
त्वन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छामि धर्मनिर्णयमुत्तमम् ३॥

हे योगिन्! मेरे इस संशयको आप कृपाकरके दूर कीजिये मैं आपके मुखसे धर्मका उत्तम निर्णय श्रवण किया चाहता हूं इति ॥ ३ ॥

ब्रह्मानंद उवाच।

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं धर्मसाधनम्।
धर्मशास्त्रेषु सर्वत्र विहितं पृथिवीपते ॥ ४ ॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे पृथिवीपते राजन्! सर्वजगा धर्मशास्त्रोंमें प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग दोप्रकारसें धर्मका साधन कथन किया है इति ॥४॥

प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः पापपुण्यविमिश्रितः।
निवृत्तिलक्षणस्तु स्यात् केवलं पुण्यहेतुकः ५

तिनमें प्रवृत्तिलक्षण धर्म तो पाप और पुण्य दोनोंकरके मिश्रित होवेहै और निवृत्तिलक्षण धर्म केवल पुण्यरूप होताहै इति ॥ ५ ॥

प्रवृत्तिं केचिदिच्छंति निवृत्तिं चापरे जनाः।
तत्राधिकारभेदेन तयोराचरणं वरम् ॥ ६ ॥

तिनसें कोई लोक तो प्रवृत्तिधर्मका आचरण करना ठीक समझतेहैं और कोई लोक निवृत्तिधर्मका आचरण करना उत्तम समझते हैं सो अपने अपने अधिकारके अनुसार तिन दोनोंका आचरण करना ठीक होताहै इति ॥ ६ ॥

राज्ञां प्रवृत्तिधर्मो हि धर्मशास्त्रेषु वर्णितः ।
धर्मो निवृत्तिसंज्ञस्तु तेषां स्याद्दुष्करो यतः ७

सो धर्मशास्त्रोंमें विशेषकरके राजालोकोंको प्रवृत्तिधर्मका अधिकार निरूपण किया है क्योंकि निवृत्तिधर्मका आचरण करना तिनको वहुत कठिन पडता है इति ॥ ७ ॥

युद्धहिंसा यज्ञहिंसा चौरहिंसा तथैव च ।
सर्वासां स्वार्थहेतुत्वात् दोषवत्त्वं न संशयः८

सो यद्यपि युद्धकी हिंसा यज्ञकी हिंसा और चोर आदि दोषियोंकी हिंसा यह तीनों हिंसा स्वार्थके कारणसें होतीहैं इसलिये इन तीनोंमें दोषकी प्राप्ति तो अवश्य होतीहै इति ॥ ८ ॥

पुण्याधिक्यं भवेद्यत्र पापं चाल्पतरं भवेत् ।
तत्कार्यं लाभहेतुत्वात् धर्ममाहुर्मनीषिणः॥९॥

परंतु जिस काममें पुण्य अधिक होवे और पाप थोडा होवे उस कामको लाभका हेतु होनेसें बुद्धिमान् ऋषिलोकोंने धर्म कथन किया है इति ॥ ९ ॥

यत्र पुण्यं भवेदल्पं पापं स्यादधिकं पुनः ।
तत्कार्यं दूरतस्त्याज्यं श्रेयोर्थिभिर्महीपते १०

तथा जिस काममें पुण्य थोडा होवे और पाप अधिक होवे तो उस कामको कल्याणकी इच्छावाले पुरुषको दूरसेंहि परित्याग करदेना चहिये अर्थात् वो काम कवी नहि करना चहिये इति ॥ १० ॥

युद्धहिंसा महीपानां प्रजापालनकारणात् ।
दोषयुक्तापि धर्मस्य हेतुर्भवति निश्चितम् ११

सो युद्धकी हिंसा यद्यपि दोषयुक्त होतीहै तथापि उससें ठीकठीक प्रजाका पालन होनेसें राजालोकोंको वो निश्चयकरके धर्मका कारण होवेहै इति ॥ ११ ॥

यज्ञे पशुवलिश्चापि पुण्याधिकतया नृप ।
धर्मः प्रोक्तो महाराज मुनिभिर्वेदवित्तमैः १२

तथा हे नृप! यज्ञमें पशुका वलिदान करनाभी दोषयुक्त है तथापि यज्ञमें दूसरा पुण्य वहुत अधिक होनेसें उसकोभी वेदकें जाननेहारे ऋपि-लोकोंने धर्म कथन किया है इति ॥ १२ ॥

चौरेषु दंडदानं च लोकानां सौख्यवर्धनम् ।
तस्मात्तदपि धर्मः स्याद् बहुपुण्यफलोदयात्१३

तैसेहि चोरोंको दंड देनाभी दूसरे लोकोंको सुखशांतिका कारण होनेसें अधिक पुण्यका हेतु होवे है इसलिये वोभी धर्महि होवे है इति ॥१३॥

निवृत्तिलक्षणो धर्मो मुनीनां परिकीर्तितः ।
यथा जपस्तपश्चापि योगाभ्यासस्तथैव च १४

और निवृत्तिलक्षण धर्म ऋषि मुनिलोकोंके, लिये धर्मशास्त्रोंमें कथन किया है जैसे कि जप तप वा योगाभ्यास और वेदांतका विचार आदि साधन हैं इति ॥ १४ ॥

हिंसाविवर्जितत्वात्तु शुद्धो धर्मः समीरितः ।
केवलं पुण्यहेतुत्वादुत्तमो मुनिभिर्मतः ॥१५॥

सो निवृत्तिधर्म हिंसासें रहित होनेसें शुद्ध धर्म कहलाता है और सो केवल पुण्यका हेतु होनेसें मुनिलोकोंने प्रवृत्तिधर्मसें उत्तम माना है इति ॥ १५ ॥

राज्ञामपि महावाहो न निषिद्धो विरागिणाम् ।
निवृत्तिलक्षणो धर्मो मोक्षमार्गाभिलाषिणाम् ॥

हे महावाहो राजन्! यद्यपि निवृत्तिधर्म ऋषि मुनियोंके लिये विधान किया है तथापि जो विपयोंसें विरक्त वा मोक्षमार्गकी इच्छावाले राजालोक होवें तो तिनके लियेभी निवृत्तिधर्मके आचरण करनेका निपेध नहि है अर्थात् वोभी निवृत्तिधर्मका आचरण करसकते हैं इति ॥१६॥

वहवो हि महीपालाः पृथुरघ्वादयः पुरा ।
निवृत्तिधर्ममाश्रित्य न्यस्तदंडा वनं ययुः १७

क्योंकि पृथु रघु भरत आदि अनेक पहलेके राजालोक तपश्चर्या वा योगाभ्यास आदि निवृत्तिधर्मको आश्रयण करके राजदंडको छोड करके वनको चलेजाते भये पुराणोंमें सुननेमें आतेहैं इति ॥ १७ ॥

मुनीनां राजधर्मोपि कचिद्ग्राह्यतयोदितः ।
रामद्रोणादयो विप्रा वभूवुः शस्त्रधारिणः१८

तथा तैसेहि कहीं राजायोंका प्रवृत्तिधर्म मुनि-

लोकोंकोभी ग्रहण करना कथन किया है जैसे कि परशुराम वा द्रोणाचार्य आदि ब्राह्मणलोकों-नेभी शस्त्र धारण किये इतिहासोंमें सुननेमें आते हैं इति ॥ १८ ॥

एवं सर्वस्य धर्मस्य गतिः सर्वत्र दृश्यते ।
स्वानुकूलतया राजन् कर्तव्यो धर्मसंग्रहः १९

हे राजन्! इसप्रकार प्रवृत्ति वा निवृत्तिधर्म दोनोंकी सब जगा गति देखनेमें आवे है इसलिये अपनी अनुकूलताके अनुसार धर्मका संग्रह करना चहिये इति ॥ १९ ॥

मुनिधर्मे स्थितो वापि राजधर्मगतोपि वा ।
जीवरक्षणमेवादौ कुर्यात्सर्वत्र धर्मवित् २०

चाहे वो मुनियोंके निवृत्तिधर्ममें स्थित होवे और चाहे राजालोकोंके प्रवृत्तिधर्ममें स्थित होवे परंतु सब जगा सर्वदा काल धर्मके जाननेहारे पुरुषको जीवरक्षण धर्मका अवश्य पहले आचरण करना चहिये इति ॥ २० ॥

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परं तपः ।
अहिंसासदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति २१

किसी जीवकीभी जो हिंसा नहि करनी है सोई परम धर्म है और अहिंसाहि परम तप है तथा अहिंसाके बराबर इस जगत्में कोई पुण्य-कर्म न पहले कवी हुया है और न आगे कवी होवेगा इति ॥ २१ ॥

अहिंसयैव भूतानां मुनयो विजितेन्द्रियाः ।
श्रेयः परमनुप्राप्ताः शतशोऽथ सहस्रशः २२

क्योंकि अहिंसासेंहि पहलेके जितेन्द्रिय सैंकडों तथा हजारों ऋषि मुनिलोक परमधाम मोक्षपदको प्राप्त होतेभये हैं इति ॥ २२ ॥

जाजलिर्नाम विप्रर्षिः पक्षिणोंऽडानि पोषयन् ।
जटाकलापे संप्राप्तः सिद्धिं परमदुर्लभाम् २३

महाभारतमें लिखा है कि जाजलि नामका ऋषि अपने जटाजूटमें पक्षियोंके अंडोंको पोषण करके परम दुर्लभ तपकी सिद्धिको प्राप्त होता भया इति ॥ २३ ॥

कपोतोपि वने राजन् व्याधस्य प्राणरक्षणात् ।
स्वर्गं जगाम वै सद्यः सभार्यो दिव्यदेहधृक् २४

तथा यहभी महाभारतमें लिखा है कि वनमें एक कबूतर एक व्याधके प्राणोंकी रक्षा करनेसें अपनी स्त्रीके सहित दिव्य देहको धारण करके विमानपर चढकर स्वर्गलोकको जाताभया इति ॥ २४ ॥

शिबिर्भूमिभृतां श्रेष्ठः कपोतं शरणागतम् ।
रक्षयित्वा स्वमांसेन लेभे गतिमनुत्तमाम् २५

तथा यहभी महाभारतमें लिखा है कि शिवि-राजा अपनी शरणमें आयेहुये कबूतरकी रक्षाके लिये कबूतरकी बराबर तोलकर अपने शरीरका मांस देकरके परम गतिको प्राप्त होता भया इति ॥ २५ ॥

जपस्तपश्च योगश्च ब्रह्मचर्यं व्रतानि च ।
अहिंसयैव सिद्ध्यंति राजन्नैवात्र संशयः २६

हे राजन्! जप करना तप करना योगाभ्यास करना ब्रह्मचर्य पालन करना और नानाप्रकारके

चान्द्रायण आदि व्रत करने यह सर्व शुभकर्म अहिंसासेहि सिद्ध होते हैं इसमें कुछ संशय नहि हैं इति ॥ २६ ॥

जीवहिंसारतो नित्यं यत्किंचित्कुरुते शुभम्।
कर्माशु तद्विहन्येत पापदोषैर्जडीकृतम् ॥२७॥

और जो पुरुष जीवहिंसा करता है तो वो जो जो कुछ शुभ कर्म करता है तो उसका सवी कर्म पाप वा दोषोंसें क्षीण हुया नष्ट होजाताहै इति ॥ २७ ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति नराधिप।
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित् २८

हे नराधिप! जो पुरुष सर्व जीवोंको अभयदान देताहै अर्थात् किसी जीवकोभी दुःख नहि देता है तो उसकोभी किसी जगा इसलोकमें वा पर-लोकमें कहींभी दुःख वा भयकी प्राप्ति नहि होवे है इति ॥ २८ ॥

तस्माद्धिंसा परित्याज्या सर्वथा सुखमिच्छता।
जीवरक्षां परं धर्मं निश्चयेन विजानता ॥ २९॥

इसलिये सर्वप्रकारसे अपने आत्माका सुख वा कल्याण इच्छनेवाले पुरुषको निश्चय करके जीवरक्षाको परमधर्म समझकर सर्व प्रकारसें जीवहिंसाका परित्याग करना चहिये इति ॥२९॥

सर्वा विनश्वरा राजन् लोकेऽस्मिन् भोगसंपदः।
परं धर्मं निषेवेत ततो मोक्षाय बुद्धिमान् ३०

हे राजन्! इसलोकमें राज्य धन वैभव आदि सवी भोगकी संपत्तियां नाशवान् क्षणभंगुर हैं कोई वस्तु स्थिर नहि रहतीहै इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको सर्व सांसारिक वैभवोंका ध्यान छोडकर केवल अपने आत्माकी मुक्तिके लिये परम निवृत्ति-धर्मकाहि सेवन करना चहिये इति ॥ ३० ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायामहिंसाधर्मनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

भगवन् संशयः सर्वो निवृत्तो जीवरक्षणे ।
त्वत्प्रसादान्महाबुद्धे ज्ञातं धर्मस्य साधनम् १

राजा बोले हे महाबुद्धे बडी विशालबुद्धि-वाले भगवन् ! तुमारी कृपासे जीवरक्षा बाबतमें मेरे मनका सर्व संशय निवृत्त होगया और मैने धर्मका साधन वा संचय करनाभी भलीप्रकारसे जानलिया है इति ॥ १ ॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि दानधर्मं महामुने ।
किमर्थं दीयते दानं लोके धर्मभृतां वर ॥२॥
किं दानं सर्वदानानामुत्तमं परिकीर्तितम् ।
कस्मै देयं च तद्दानं विधिना केन वा विभो ३

हे सर्वधर्मके धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवन् ! अब मैं आपसें दानधर्मका श्रवण करना चाह-ताहूं कि जगत्में लोक क्यों दान करतेहैं अर्थात् दान देनेका क्या प्रयोजन है और हे विभो ! सर्व दानोंमें उत्तम दान कौनसा है और वो दान

किसके प्रति देना चहिये अर्थात् दान देनेके कौन अधिकारी हैं तथा सो दान किसविधिमें देना चहिये सो यह सर्व वार्तायोंका निर्णय कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ २ ॥ ३ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

दानधर्मं वदाम्येतं शृणु भूप यथाक्रमम् ।
दानमेव महीपानां श्रेयस्करमनुत्तमम् ॥ ४ ॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे भूप ! अब दानधर्मका मैं तेरोको अनुक्रमसें कथन करताहूं सो तूं श्रवण कर क्योंकि राजालोकोंका दानहि परम कल्याण करनेवाला है इति ॥ ४ ॥

शुक्लं कृष्णं च मिश्रं च करं गृह्णंति भूभृतः ।
दानेनैव विशुद्ध्यंति विपुलेन महीपते ॥ ५ ॥

हे महीपते पृथिवीपति राजन् ! शुद्ध और मलिन तथा मिलाहुया सर्व प्रकारका नीच ऊंच कर प्रजासे राजालोक लेतेहैं सो वडेवडे दान करनेसेंहि तिनकी शुद्धि होवेहै दूसरे उपायसें नहि होवे है इति ॥ ५ ॥

नानाजीवनिरोधेन राजानो भुंजते सुखम् ।
दानेनैव तरंतीह दुस्तरं दुष्कृतार्णवम् ॥ ६ ॥

तथा राजालोक दूसरे अनेक जीवोंको पराधीन रखकरके वा दुःख देकरके आप बहुत सुख भोगते हैं सो उस पापरूप दुस्तर समुद्रको केवल दान करकेहि तरते हैं अन्यथा नहि इति ॥ ६ ॥

जपस्तपश्च योगश्च तथैवेन्द्रियनिग्रहः ।
राज्ञां हि दुष्करस्तस्मात् दानमेव परं मतम् ७

किंच जप करना तप करना योगाभ्यास करना और सर्व इन्द्रियोंका दमन करना यह काम राजा लोकोंके लिये वडे कठिन हैं इस लिये तिनके लिये दान करना हि परम श्रेष्ठ ऋषिलोकोंने माना है इति ॥ ७ ॥

जंतूनां यद्धितं लोके सुकृतं तदिहोच्यते ।
तेषां चैवाहितं प्रोक्तं पातकं मुनिपुंगवैः ॥८॥

इस जगत्में दूसरे जीवोंका जो हित करना है सोई पुण्य कहिये है और जीवोंको जो क्लेश देना है सोई पाप श्रेष्ठ मुनिलोकोंने कथन किया है इति ॥ ८ ॥

परेषां सुखहेतुत्वात् दानं स्यात्पुण्यकारणम् ।
धर्माभिलाषिभिस्तस्मात् दीयते दानमुत्तम

सो दान देनेसे दूसरे जीवोंको सुखकी प्राप्ति होती है इसलिये दान करना पुण्यका कारण है सो धर्मसंग्रह करनेवाले पुरुष इसी कारणसें दान देते हैं इति ॥ ९ ॥

अन्नदानं तु सर्वेषां दानानामुत्तमं नृप ।
अन्नेनैव हि जीवंति सर्वदा सर्वदेहिनः ॥१०॥

हे नृप! सर्व दानोंमें अन्नदान करना श्रेष्ठ है, क्योंकि सर्वदाकाल सबी जीव अन्नसेंहि जीते हैं ति ॥ १० ॥

मनुष्याः पशवश्चैव पक्षिणश्च महीपते ।
अन्नमिच्छंति सर्वत्र ये चान्ये जलचारिणः११

क्योंकि मनुष्य पशु पक्षी और जो जल जीव हैं सो सबी सर्वत्र अन्नकी इच्छा करते हैं इसलिये अन्नका दान करना सर्वसें श्रेष्ठ है इति ॥ ११ ॥

अन्नेन देवताः सर्वास्तुष्यंति पितरस्तथा ।
तस्मादन्नात्परं दानं न भूतं न भविष्यति १२

तथा सर्व देवता वा पितरलोक यज्ञमें वा श्राद्धमें अन्नसेंहि प्रसन्न होते हैं, इसलिये अन्नके समान दूसरा कोई दान न हुया है और न होवेगा इति ॥ १२ ॥

जलदानं तथा भूप श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ।
प्राणरक्षणहेतुत्वात् जलमन्नाद्विशिष्यते १३

तथा हे भूप ! बुद्धिमान् ऋषिलोकोंने जलका दान करनाभी वहुत श्रेष्ठ कथन किया है क्योंकि प्राणोंकी रक्षाका कारण होनेसें जलका दान अन्नसेंभी विशेष फलका हेतु होवेहै इति ॥१३॥

शीतकाले च राजेन्द्र वस्त्रदानं वरं मतम् ।
शीतार्त्तानां न वै निद्रा न सुखं न च जीवनम्१४

हे राजेन्द्र ! तथा शीतकालमें वस्त्रोंका दान करनाभी श्रेष्ठ माना है क्योंकि शीतसें पीडित पुरुषोंको रातको निद्रा नहि आती है और न सुख होता है और न सुखसें जीना होता है इति ॥ १४ ॥

भूमिदानं च तद्वत्स्यादन्नदानसमं नृप ।
भूमेरेव यतोऽन्नस्य समुत्पत्तिः प्रजायते॥१५॥

तथा हे नृप! तैसेहि पृथिवीका दान देनाभी अन्नदानके समान होवे है क्योंकि पृथिवीसें सर्व प्रकारके अन्नकी उत्पत्ति होती है इति ॥ १५ ॥

गोदानं च तथा राजन्नुत्तमं परिकीर्तितम् ।
घृतदुग्धप्रदानेन लोकानामुपकारकम् ॥१६॥

तथा हे राजन्! गौदान करनाभी ऋषिलोकोंने उत्तम कथन किया है क्योंकि उससें घृत वा दुग्धकी प्राप्ति होनेसें लोकोंका बडाभारी उपकार होता है इति ॥ १६ ॥

स्वर्णदानं च संप्रोक्तं वरं मुनिवरैर्नृप ।
स्वर्णेन प्राप्यते लोके वस्तुजातं यतोऽखिलम्१७

तथा हे नृप! तैसेहि स्वर्णदानभी सबसें श्रेष्ठ मुनिलोकोंने कथन किया है क्योंकि स्वर्णसेंहि इसलोकमें खान पान पहरान आदि सर्व पदार्थोंकी प्राप्ति होतीहै इति ॥ १७ ॥

यस्योपयोगि यद्वस्तु यस्मिन्काले भवेन्नृप ।
तदेव काले तस्मिंश्च देयं दानं नराधिप ॥१८॥

हे नराधिप सर्व नरोंके अधिपति राजन् ! जिस कालमें जिस पदार्थकी जिस पुरुषको आवश्यकता होवे उस कालमें उसी पदार्थका उसको दान देना बहुत श्रेष्ठ है इति ॥ १८ ॥

अन्नदाने महाराज जलदाने तथैव च ।
वस्त्रदाने च कर्त्तव्यं नैव पात्रनिरीक्षणम् १९

हे महाराज ! अन्नदान करनेमें वा जलदान करनेमें वा वस्त्रदान करनेमें पात्रकुपात्रकी परीक्षा नहि करनी चहिये अर्थात् अन्न जल और वस्त्र तो सबीकोहि देना चहिये इति ॥ १९ ॥

सर्वेपामेव जंतूनामधिकारोऽन्नभक्षणे ।
जलपाने च वस्त्रे च नात्र कार्या विचारणा २०

क्योंकि अन्नभक्षण करनेमें वा जलपान करनेमें और वस्त्र पहरनेमें सर्व जीवोंका साधारण अधिकार है इसलिये उनमें पात्र कुपात्रकी परीक्षा करनेकी आवश्यकता नहि है इति ॥ २० ॥

गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं तथैव च ।
सर्वदैव सुपात्रेभ्यो विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् २१

और गोदान वा भूमिदान वा स्वर्णदान तो सुपात्र ब्राह्मणोंकोहि देना चहिये कुपात्र पुरुषोंको कदाचित् नहि देना चहिये इति ॥ २१ ॥

वेदाध्ययनसंसक्ता जपध्यानरताश्च ये ।
जितेन्द्रियाः सदाचारा दानपात्राणि ते द्विजाः॥

जो ब्राह्मणलोक नित्यंप्रति वेदके पठन पाठनमें तत्पर होवें और जो जप तप ध्यानमें लगे हुये होवें और जितेन्द्रिय तथा श्रेष्ठ आचरणवाले होवें सोई दान देनेके योग्य सुपात्र समझने चहिये इति ॥ २२ ॥

विद्यार्थिनश्च ये राजंस्तेषामध्यापकास्तथा ।
तेभ्यो देयं सदा दानं सादरं पृथिवीपते २३

तथा हे पृथिवीपते! जो विद्यार्थीलोक संस्कृत आदि श्रेष्ठ विद्या पढनेवाले होवें तथा जो उनके पढानेवाले पंडित विद्वान् लोक होवें तिनके प्रतिभी आदरपूर्वक दान देना चहिये इति २३

त्यक्तसंसारकार्या ये जपध्यानपरायणाः ।
त्यागिनो योगिनश्चापि दानार्हास्ते विशेषतः२४

तथा सर्वसंसारके व्यवहारोंको छोड करके सर्वदाकाल जप तप ध्यान और शास्त्रविचारमें तत्पर जो साधु महात्मा संन्यासी वा योगीलोक होवें सो विशेषकरके दान देनेके योग्य समझने चहिये इति ॥ २४ ॥

मूकांधबधिराणां च दरिद्राणां च रोगिणाम् ।
धनार्जनेऽसमर्थानामपि दानाधिकारिता २५

तथा जो पुरुष गुंगे बहरे दरिद्री वा रोगी होवें जो कि धन कमानेमें वा अपनी जीविका करनेमें असमर्थ होवें सोभी साधारण दानके अधिकारी समझने चहिये अर्थात् उनकीभी सहायता करनी चहिये इति ॥ २५ ॥

पुष्करं च कुरुक्षेत्रं नैमिषं त्र्यंबकं तथा ।
दानस्थानानि राजेन्द्र प्रोक्तान्यत्र मनीषिभिः ।

हे राजेन्द्र ! पुष्कर कुरुक्षेत्र नैमिषारण्य वा त्र्यंबकेश्वर यह इस लोकमें दान करनेके योग्य

पवित्र स्थान ऋषिलोकोंने कथन किये हैं अर्थात् इन स्थानोंमें दान देनेसें विशेष फलकी प्राप्ति होतीहै इति ॥ २६ ॥

गंगा च यमुना चैव नर्मदा च सरस्वती ।
गोदावरीनदी चैव प्रशस्ता दानकर्मणि ॥२७॥

तथा गंगा यमुना नर्मदा सरस्वती और गोदावरी यह नदियांभी दान देनेके उत्तम स्थान हैं अर्थात् इनके किनारेपर दान देनेसेंभी विशेष फल होवेहै इति ॥ २७ ॥

अन्यान्यपि च तीर्थानि विख्यातानि च भूतले ।
दानस्थानानि जानीहि पवित्राणि नरोत्तम २८

तथा हे नरोत्तम ! सर्व नरोंमें श्रेष्ठ राजन् ! औरभी जो पृथिवीमें काशी प्रयाग आदि पवित्र तीर्थ प्रसिद्ध हैं सोभी सबी दान देनेके स्थान समझने चहिये इति ॥ २८ ॥

अमावास्या तिथिः श्रेष्ठा द्वादशी पूर्णिमा तथा
दानकर्मणि संप्रोक्ता सर्वत्र मुनिपुंगवैः ॥२९॥

तथा अमावास्या द्वादशी पूर्णमासी यह तिथियां सर्व जगा धर्मशास्त्रोंमें दान करनेमें श्रेष्ठ मुनिलोकोंने कथन करी हैं इति ॥ २९ ॥

ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोश्च भूकंपे च विशेषतः ।
दानं कार्यं महीपाल पुण्ये जन्मदिने तथा ३०

हे महीपाल! सूर्यग्रहणमें चन्द्रग्रहणमें भूकंपमें और पर्वदिनमें तथा अपने जन्मदिनमें विशेषकरके दान करना चहिये इति ॥३०॥

सुपात्रं लभ्यते यत्र संकल्पश्च यदा भवेत् ।
तत्रैव दानं कर्तव्यं देशं कालं न चिंतयेत् ३१

जहां दान देनेयोग्य सुपात्र मिलजावे और जब दान करनेका संकल्प मनमें उठे उसीवकत दान देदेना चहिये वहां उत्तम देश और श्रेष्ठ कालकी प्रतीक्षा नहिं करनी चहिये इति ॥३१॥

धर्मस्य शीघ्रगामित्वादायुषश्चाप्यनिश्चयात् ।
दाने विलंबता राजन् नैव कार्या कदाचन ३२

क्यों कि हे राजन्! धर्मकी गति बडी शीघ्र होनेसें और इस मनुष्यदेहकी आयुषका कुछ

निश्चय नहि होनेसें दान करनेमें कवी विलंब नहि करना चहिये अर्थात् जब संकल्प उठे उसी वकत दान करदेना चहिये इति ॥ ३२ ॥

सत्कारपूर्वकं दानं प्रशंसंति मनीषिणः ।
निरादरेण यद्दत्तं तद्दानं निष्फलं भवेत् ३३

और जब दान देना तो सर्वजगा सत्कारपूर्वक देना चहिये सो सत्कारपूर्वक दानकी हि सब जगा बुद्धिमान् ऋषिलोकोंने प्रशंसा की है क्यों कि निरादरसें दिया हुया दान सब निष्फल होवेहै इति ॥ ३३ ॥

दानं दत्त्वा न कर्त्तव्यः पश्चात्तापः कदाचन।
पश्चात्तापेन नश्यंति दानानि सुमहांत्यपि ३४

किंच दान देकरके पीछेसे कवी पश्चात्ताप नहि करना चहिये क्योंकि पश्चात्ताप करनेसे बडे-बडे कियेहुये दानभी नष्ट होजातेहैं इति ॥ ३४ ॥

बहवो हि महीपालाः पूर्वे धर्मपरायणाः ।
दत्त्वा दानानि राजेन्द्र पूतपापा दिवं गताः ३५

हे राजेन्द्र ! पहलेके अनेक धर्मपरायण राजा लोक वडेवडे दान देकरके सर्व पापोंसें रहित हुये स्वर्गलोकको प्राप्त होतेभये हैं इति ॥ ३५ ॥

वलिर्वलवतां श्रेष्ठो वामनाय महात्मने ।
भूमिदाननिमित्तेन ददौ सर्वस्वमात्मनः ३६

जैसे कि सर्व वलवानोंमें श्रेष्ठ जो वलिराजा था सो तीन चरण पृथिवीके दान देनेसें वामन भगवान्‌को अपना सर्वस्व देदेताभया इति ॥३६॥

हरिश्चन्द्रश्च धर्मात्मा विश्वामित्राय धीमते ।
सकुटुंबं ददौ सर्वं कोशं धृतिपरायणः ॥३७॥

तथा हरिश्चंद्र राजानेभी तपस्वी विश्वामित्र ऋषिके प्रति अपने कुटुंवके सहित सारे खजाने-का धन देदिया था इति ॥ ३७ ॥

दधीचिरपि विप्रर्षिर्देवानां जयहेतवे ।
स्वकीयास्थीनि राजेन्द्र प्रादादिन्द्राय सत्वरम् ॥

तथा दधीचिऋषिनेंभी युद्धमें देवतायोंकी जय होनेके लिये वज्र वनानेकेवास्ते इन्द्रको अपने शरीरकी हड्डियां निकाल करके देदीथीं इति ॥ ३८ ॥

कृष्णाय साधुवेषाय याच्यमानः शिखिध्वजः ।
स्वसुतस्य शरीरार्धं प्रायच्छद्धर्मतत्त्ववित् ३९

तथा साधुवेषधारी अर्जुनके साथ कृष्णनें जब राजा मोरध्वजसें अपने सिंहके लिये मांसका भोजन मांगा तो धर्मात्मा राजानें अपने पुत्रका आधा शरीर काटकरके देदिया था इति ॥ ३९ ॥

कर्णश्चापि महाशूरः कवचं देहरक्षणम् ।
ददौ सद्यो महेन्द्राय विप्ररूपाय याचते ४०

तथा महाशूरबीर कुंतीके पुत्र कर्णनेंभी अपने शरीरकी रक्षा करनेवाले कवचको कपटसे ब्राह्मण रूपधारी इन्द्रको याचना करनेसे तत्काल देदि-याथा इति ॥ ४० ॥

एते चान्ये च भूपालास्तथा विप्रर्षयो नृप ।
दानधर्मेण संप्राप्ताः कीर्तिं चानुत्तमां गतिम् ४१

हे नृप ! इत्यादि औरभी अनेक राजालोक तथा ब्रह्मर्षिलोक दानधर्मसेंहि जगत्में बडी भारी कीर्ति और परलोकमें उत्तम गतिको प्राप्त होते-भये हैं इति ॥ ४१ ॥

दानेन वर्धते लक्ष्मीर्विद्या दानेन वर्धते ।
दानेन वर्धते धर्मः कीर्तिर्दानेन वर्धते ४२

दान करनेसें लक्ष्मीकी वृद्धि होवेहै और दान करनेसें विद्याकी वृद्धि होवेहै और दान करनेसें धर्मकी वृद्धि होवेहै तथा दान करनेसें सर्व जगत्में कीर्तिकी वृद्धि होवेहै इति ॥ ४२ ॥

दानेन हन्यते पापं दानात्स्वर्गे महीयते ।
दानेन प्राप्यते मोक्षस्तस्माद्दानं परं मतम् ४३

तथा दान करके पापका नाश होताहै और दानकरके अंतःकरणके निर्मल होनेसें ज्ञानद्वारा मोक्षपदकी प्राप्ति होवेहै इसलिये दानधर्म सर्व दूसरे धर्मोंसें ऋषिलोकोंने उत्तम माना है इति ॥ ४३ ॥

स्वदेहपोषणे राजन् सर्वे शक्ताः शरीरिणः ।
परोपकरणं लोके प्रधानं जन्मनः फलम् ४४

हे राजन् ! अपने अपने शरीरपोषण करनेमें तो पशु पक्षी आदि सर्व देहधारी जीव समर्थ होते हैं परंतु दान देकर दूसरे जीवोंका उपकार

करना यह मनुष्यजन्म धारण करनेका एक मुख्य फल समझना चहिये इति ॥ ४४ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां दानधर्मनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

दानधर्मः श्रुतो योगिंस्त्वत्तः सम्यक्तया मया ।
अधुना ब्रूहि मे प्राज्ञ जपस्य विधिमुत्तमम् १

राजा बोले हे प्राज्ञ ! सर्व बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भगवन् ! आपने जो दानधर्मका वर्णन किया सो मैंने भलीप्रकारसें श्रवण किया अब कृपा करके मेरेको जपकीभी उत्तम विधि कथन करो इति ॥ १ ॥

कथं जपो विधातव्यः कस्य मंत्रस्य वा विभो ।
मंत्राणामुत्तमो मंत्रः को भवेदिह सिद्धिदः २

हे विभो ! जप किस प्रकारसें करना चहिये

और किस मंत्रका जप करना चहिये तथा सर्व मंत्रोंमें कौनसा मंत्र श्रेष्ठ है सो कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ २ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

राजंस्तेऽहं प्रवक्ष्यामि विधानं मंत्रसाधने ।
यथा जपेन सिद्ध्यंति मंत्राः शीघ्रं नराधिप ३

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन् ! मैं तेरेको मंत्रोंके जप और साधन करनेकी विधि कथन करताहूं जिसप्रकार जपनेसें शीघ्रहि मंत्रोंकी सिद्धि होवे है इति ॥ ३ ॥

वैदिकास्तांत्रिकाश्चैव द्विधा मंत्राः समीरिताः ।
तेषां जपविधिं सम्यक् शृणु भूप यथाक्रमम् ४

हे भूप ! वेदोक्त और तंत्रशास्त्रोक्त इस भेदसें दो प्रकारके मंत्र होतेहैं सो तिन दोनोंके जपकी विधि मैं तेरेको शास्त्रोक्त रीतिसें कहताहूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ ४ ॥

गुरुं संतोष्य यत्नेन सेवया द्रविणेन च ।
शुभे मुहूर्ते राजेन्द्र गृह्णीयान्मंत्रमुत्तमम् ॥५॥

हे राजन् ! प्रथम शरीरसें और पुष्कल धनसें अपने गुरुको प्रसन्न करके शुभ तिथि वा श्रेष्ठ मुहूर्तमें तिनसें उत्तम मंत्रका ग्रहण करना चहिये इति ॥ ५ ॥

यस्मिन् देवे भवेद्भक्तिः श्रद्धा चापि विशेषतः ।
तस्यैव मंत्रो भूपाल ग्रहीतव्यो गुरोर्मुखात् ६

हे भूपाल ! जिस देवतामें अपनी विशेषकरके भक्तिश्रद्धा वा प्रीति होवे उसी देवताका गुरुके मुखसे मंत्र ग्रहण करना चहिये इति ॥ ६ ॥

गुरोर्गृहीता मंत्रा हि शीघ्रं सिद्धिप्रदायिनः ।
अन्यथा फलहीनाः स्युः सिद्धिहीनाश्च भूपते ॥

क्योंकि गुरुमुखसे ग्रहण कियेहुये मंत्रहि शीघ्र सिद्धिके देनेवाले होतेहैं और जो विना गुरुके अपने आप ग्रंथोंमें देख करके मंत्र जपने हैं सो ठीकठीक फल देनेवाले नहि होते और उनसें सिद्धिकी प्राप्तिभी नहि होतीहै इति ॥ ७ ॥

मंत्राणामुत्तमो मंत्रो गायत्री परिकीर्तिता ।
ततोपि राजञ्जानीहि मोक्षदं प्रणवं परम् ॥८॥

हे राजन्! सर्व मंत्रोंमें गायत्रीमंत्र उत्तम ऋषि-लोकोंने कथन किया है और तिस गायत्रीसेंभी मोक्ष देनेहारे ओंकारमंत्रको तूं श्रेष्ठ जान अर्थात् एकला ओंकारका जप गायत्रीसेंभी श्रेष्ठ है इति ८

तथैवाष्टाक्षरो मंत्रो वैष्णवः सर्वकामदः ।
पंचाक्षरः शिवस्योक्तो मंत्रश्चानुत्तमो नृप ९

हे नृप! तैसेहि विष्णुका (ओंनमोनारायणाय) यह अष्टाक्षर मंत्रभी सर्व कामनायोंके देनेहारा है तथा (ओंनमः शिवाय) यह पंचाक्षर शिवका मंत्रभी सबसे श्रेष्ठ है इति ॥ ९ ॥

जपः सकामो निष्कामो द्विविधो भवति ध्रुवम्।
लोकरुच्यनुसारेण विधिं तत्र निबोध मे १०

हे राजन्! मंत्रका जप सकाम वा निष्काम इस रीतिसें लोकोंकी रुचिके भेदसें दो प्रकारका होवेहै सो उन दोनोंके जप करनेकी विधिको तूं मेरेसें श्रवण कर इति ॥ १० ॥

शुभासने समासीनः शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
संकल्पं जपसंख्यायाः कुर्यादादौ यथाक्रमम् ॥

साधक पुरुषको चहिये कि प्रथम सुंदर स्वच्छ आसन पर पवित्र वा स्वस्थचित्त होकर बैठ करके पहले जपकी संख्याका विधिपूर्वक संकल्प करे अर्थात् मैं इसनिमित्त इतना जप करूंगा ऐसा पहले संकल्प करे इति ॥ ११ ॥

त्रिराचम्य ततः कृत्वा प्राणायामत्रयं सुधीः ।
देवस्य मानसं ध्यानं पूजनं च समाचरेत् १२

पीछे तीनवार आचमन करके और तीनवार प्राणायाम करे तदनंतर अपने इष्टदेवका मनमें ध्यान करके मनसेंहि तिसका भली प्रकारसें पूजन करे इति ॥ १२ ॥

ऋषिं छन्दोऽधिदैवं च स्मृत्वा मंत्रस्य भूपते ।
न्यासंच विधिवत्कृत्वा जपेन्मंत्रं शनैःशनैः १३

तथा मंत्रके ऋषि छन्द और देवताका उच्चारण करके और मंत्रशास्त्रोक्त रीतिसें मंत्रका षडंग-न्यास वा ध्यान करके धीरेधीरे मंत्रका जप करे इति ॥ १३ ॥

उपांशुर्मानसो वापि जपः श्रेष्ठः समीरितः ।
नोच्चैर्मंत्रं जपेद्धीमान् सिद्धिकामः कदाचन १४

उपांशु अर्थात् दांतोंमें वा मानस अर्थात् मनमें मंत्रका जप करना ऋषिलोकोंने श्रेष्ठ कथन किया है इसलिये मंत्रसिद्धिकी इच्छावालेको उच्चस्वरसें मंत्रका जप कवी नहि करना चहिये इति ॥ १४ ॥

जपकाले मनो गच्छेद्यत्र यत्र महीपते ।
ततस्ततो नियम्याशु देवध्याने निवेशयेत् १५

और जप करनेके कालमें जहांजहां चंचल मन जावे तो तहांतहां सर्वजगासें रोक करके मनको अपने इष्टदेवके ध्यानमें लगाना चहिये इति १५

जपं मध्याह्नपर्यंतं कुर्यान्नैव ततः परम् ।
समसंख्यान्वितं नित्यं नैव न्यूनाधिकं क्वचित् ।

तथा प्रातःकाल अरुणोदयसें लेकर मध्यान्ह-पर्यंत जप करना चहिये और नित्य बरावर संख्याका करना चहिये न्यून वा अधिक कवी नहि करना चहिये अर्थात् कवी कमती कवी

ज्यादा ऐसा नहि करना चहिये नित्य वरावर गिनतीका करना चहिये इति ॥ १६ ॥

यावंतो मंत्रवर्णाः स्युस्तावल्लक्षं मनोर्जपः ।
पुरश्चरणमित्याहुर्मंत्रशास्त्रविशारदाः ॥१७॥

जितने मंत्रके अक्षर होवें उतने लक्ष उसका जप करनेसें एक पुरश्चरण होता है ऐसा मंत्रशा- स्त्रके जाननेहारे ऋषिलोकोंने नियम कथन किया है इति ॥ १७ ॥

निष्कामस्य यथाशक्ति जपो नित्यं विधीयते ।
पुरश्चरणपर्यंतं सकामस्य प्रकीर्त्तितः ॥ १८ ॥

सो निष्काम पुरुषके प्रति तो केवल अपनी शक्तिके अनुसार नित्यं प्रति जप करनेका विधान कथन किया है और सकामको पुरश्चरणपर्यंत जप करना मंत्रशास्त्रोंमें कथन किया है इति ॥ १८ ॥

नीचसंभाषणं रोषं ष्ठीवनं व्यग्रतां तथा ।
पादप्रसारणं चैव जपकाले त्यजेत्सुधीः ॥१९॥

म्लेच्छआदि नीचपुरुषोंसें वार्तालाप करना क्रोध करना थूकना बीचमें किसी दूसरे काममें

लगजाना और पावोंका पसारणा इतनी वातें बुद्धिमान् साधक पुरुषको जप करतेवकतमें नहि करनी चहिये इति ॥ १९ ॥

भूशय्या ब्रह्मचर्यं च हविष्यान्नं पवित्रता ।
मंत्रानुष्ठानपर्यंतं नियमेन समाचरेत् ॥२०॥

तथा पृथिवीपर शयन करना ब्रह्मचर्यका पालन करना शुद्ध पवित्र अन्नका भोजन करना और सर्वदाकाल पवित्र रहना इतनी वातोंका मंत्रके अनुष्ठानके पूर्ण होनेपर्यंत नियमपूर्वक पालन करना चहिये इति ॥ २० ॥

मद्यं मांसं च द्यूतं च मृगयामटनं तथा ।
प्रतिग्रहं परान्नं च वर्जयेज्जपतत्परः ॥ २१ ॥

तथा जपकरनेवालेको मदिरापान करना मांस खाना जूवा खेलना शिकार खेलना परदेशाटन करना दान लेना और पराया अन्न भोजन करना इतनी वातोंका अवश्य परित्याग करदेना चहिये इति ॥ २१ ॥

एवं जपं समाप्यांते दशांशं होममाचरेत् ।
मंत्रशास्त्रविधानेन तत्तद्द्रव्यैर्यथाक्रमम् ॥२२॥

इसप्रकार उक्तरीतिसें जप संपूर्ण होनेके अनंतर मंत्रजपकी संख्यासें दशांश मंत्रशास्त्रोक्त पदार्थोंसें होम करना चहिये इति ॥ २२ ॥

हवनस्य दशांशेन तर्पणं तद्दशांशतः ।
मार्जनं विधिना कुर्यान्मंत्रीमंत्रार्थकोविदः२३

तदनंतर मंत्रजप करनेवालेको होमकी संख्यासें दशांश तर्पण करना चहिये और तर्पणके दशांशसें मार्जन करना चहिये इति ॥ २३ ॥

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात् तद्दशांशेन बुद्धिमान् ।
मनोभिलषितैर्भोज्यैः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥

तिसके अनंतर तर्पणकी संख्यासे दशांश मनोवांछित पदार्थोंसे श्रद्धाभक्तिपूर्वक ब्राह्मण-भोजन करना चहिये इति ॥ २४ ॥

देवबुद्ध्या नमस्कुर्यात् तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।
ततः पूर्णं भवेद्राजन् पुरश्चरणमुत्तमम् ॥ २५ ॥

हे राजन्! उन ब्राह्मणोंके प्रति अपने इष्टदेव-स्वरूप समझकर नमस्कार करना चहिये तथा

उनको यथाशक्ति दक्षिणा देकरके आदरपूर्वक विदा करना चहिये इसप्रकार करनेसें मंत्रका पुरश्चरण पूर्ण होवेहै इति ॥ २५ ॥

पश्चान्नित्यं जपेन्मंत्रं यथाशक्ति समाहितः ।
सायं प्रातर्महीपाल नियमेन निरंतरम् ॥२६॥

हे महीपाल! पुरश्चरण पूर्ण होनेके पश्चात् स्थिरचित्त होकरके यथाशक्ति प्रातःकाल तथा सायंकाल नित्यंप्रति नियमसें उस मंत्रका जप करना चहिये इति ॥ २६ ॥

तेन स्यादिष्टदेवस्य राजन्नूनं प्रसन्नता ।
ततः स लभते कामान्साधकोमनसीप्सितान्॥

हे राजन्! इसप्रकार नित्यंप्रति मंत्रका जप करनेसें इष्टदेवकी अवश्य प्रसन्नता होतीहै और फिर साधक पुरुषको देवताकी प्रसन्नतासें मनो-वांछित सर्व कामनायोंकी प्राप्ति होवेहै इति २७

निष्कामः प्राप्नुयाद्भूप क्रमान्मोक्षपदं पुनः ।
कल्पवृक्षसमाः सिद्धा मंत्राः सर्वफलप्रदाः२८

और हे भूप ! जो जप करनेवाला साधक पुरुष निष्काम होवे तो अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानको प्राप्त होकर क्रमसें मोक्षपदको प्राप्त होवे है क्योंकि सिद्ध हुये मंत्र कल्पवृक्षके समान सर्व फलदेनेवाले होतेहैं अर्थात् भोग वा मोक्षकी जैसी उपासक पुरुषकी इच्छा होवे वैसेहि फलकी उसको प्राप्ति होतीहै इति ॥ २८ ॥

गुरुभक्तिप्रसक्तानां श्रद्धाविश्वासधारिणाम् ।
जितेन्द्रियाणां धीराणां मंत्राः सिद्ध्यंतिभूपते ।

हे भूपते ! जो पुरुष गुरुभक्तिपरायण और श्रद्धा विश्वासधारण करनेवाले और जितेन्द्रिय तथा धीरजवान् होतेहैं उनकोहि मंत्रोंकी सिद्धि होवेहै ऐसा जानना चहिये इति ॥ २९ ॥

गुरुसंतोषहीनानां विषयासक्तचेतसाम् ।
विश्वासरहितानां च न मंत्राः सिद्धिदा नृप ३०

और हे नृप ! जो पुरुष गुरुकी प्रसन्नतासें रहित और विषयोंमें आसक्तचित्तवाले तथा विश्वासहीन होतेहैं तिनको मंत्रोंकी सिद्धि नहि होती है इति ॥ ३० ॥

तस्मादास्तिकभावेन जपेन्मंत्रं निरंतरम् ।
भोगापवर्गयोर्भूप जप एव हि कारणम् ॥३१॥

इसलिये हे भूप ! आस्तिकभावसे श्रद्धाविश्वासपूर्वक मंत्रका निरंतर जप करना चहिये क्योंकि भोग तथा मोक्षकी प्राप्तिमें जपहि कारणभूत है अर्थात् जप करनेसें भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ ३१ ॥

सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परो मतः ।
हिंसादिदोषराहित्यादायासाभावतस्तथा ३२

तथा अश्वमेध ज्योतिष्टोम आदि सर्व यज्ञोंमें जपरूप यज्ञ हि ऋषिलोकोंने श्रेष्ठ माना है क्योंकि जपयज्ञ एक तो जीवहिंसा आदि दोषसें रहित होताहै और दूसरे उसमें विशेष परिश्रमभी नहि होताहै इति ॥ ३२ ॥

जपेनैवाभवन्सिद्धा विप्रा राजर्षयः पुरा ।
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र जपं कुरु निरंतरम् ३३

हे राजेन्द्र ! तथा जप करकेहि पहलेके सव ऋषि मुनि ब्राह्मणलोक वा राजालोक सिद्धिको

प्राप्त होतेभये हैं इसलिये हे राजन् ! तूंभी निरं-
तर जप कर इति ॥ ३३ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां जपविधाननिरूपणं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
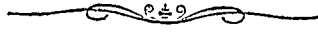
षष्ठोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

भगवञ्जपमाहात्म्यं श्रुतं सम्यगशेषतः ।
नास्ति पुण्यं जपादन्यदिति मे निश्चिता मतिः ॥

राजा बोले हे भगवन् ! मैंने जपका माहात्म्य भलीप्रकारसें श्रवण किया और मेरी बुद्धिमें यह पूर्ण निश्चय होगया कि जपके बराबर दूसरा कोई जगत्में पवित्र पुण्यवर्धक साधन नहि है इति १

तपसोपि महाबुद्धे श्रोतुमिच्छामि लक्षणम् ।
जपो हि तपसा युक्तः शीघ्रं सिद्धिप्रदो यतः २

हे महाबुद्धिवाले भगवन् ! अब मैं तपकाभी लक्षण आपके मुखसें श्रवण किया चाहताहूं

क्योंकि तप करके युक्त भया जप शीघ्र सिद्धि देनेवाला होताहै इति ॥ २ ॥

कथं तपो भवेदत्र कतिभेदं च तन्मतम् ।
किं च तस्य फलं प्रोक्तं कृपया वद मे विभो ३

हे विभो ! तप कैसे किया जाताहै और उसके कितने भेद हैं तथा तप करनेसें क्या फल होवेहै सो कृपा करके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ३ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

भूप तेऽहं प्रवक्ष्यामि लक्षणं तपसोऽखिलम् ।
यथा तपः प्रकुर्वंति श्रेयस्कामा नराधिप ॥४॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे भूप ! मैं तेरेको संपूर्ण रीतिसें तपका लक्षण कथन करताहूं जैसे कि कल्याणकी इच्छावाले पहलेके ऋषिमुनिलोक करते आयेहैं इति ॥ ४ ॥

येन देहस्तपेद्राजन्निन्द्रियाणि तपंति च ।
मनश्च तप्यते येन तत्तपः समुद्रीरितम् ॥५॥

हे राजन् ! जिस क्रियाकरके शरीर तप्त होवे और

जिस करके सब इन्द्रियां तृप्त होवें तथा जिस-करके मनभी तृप्त होवे उस क्रियाको ऋषिलोक तप कहते हैं इति ॥ ५ ॥

देवप्रसादसिद्ध्यर्थं मनोवाञ्छाप्तये तथा ।
प्रायश्चित्तनिमित्तं वा तपश्चर्या विधीयते ॥६॥

अपने इष्टदेवकी प्रसन्नताके लिये वा मनोका-मनाकी प्राप्तिके लिये अथवा किसी प्रायश्चि-त्तके लिये इन तीन कारणोंसें तपश्चर्याका विधान कथन किया जाताहै इति ॥ ६ ॥

नदीतीरेष्वरण्येषु तथा गिरिवरेषु च ।
तीर्थेष्वपि महाराज विशेषफलदं तपः ॥ ७ ॥

हे महाराज! गंगा आदि नदीके तटपर वा हिमालय आदि पर्वतके ऊपर तथा पुष्कर आदि पवित्रतीर्थके ऊपर कियाहुया तप विशेष फलदायक होताहै इति ॥ ७ ॥

अब तप करनेकी विधि कथन करते हैं—

ग्रीष्मे पंचाग्नितपनं वर्षायां वृष्टिधारणम् ।
शीते जलप्रवेशश्च तपः परममुच्यते ॥ ८ ॥

ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नितपन करना वर्षाऋतुमें वर्षाको अपने शरीरके ऊपर धारण करना शीत-कालमें कंठतक जलमें खडे रहना यह परम तप कहलाताहै इति ॥ ८ ॥

चान्द्रायणं व्रतं राजन् प्राजापत्यं व्रतं तथा ।
पराकाख्यं व्रतं चैव तपः परममुच्यते ॥ ९ ॥

तथा चान्द्रायणव्रत करना वा प्राजापत्यव्रत करना तथा पराकनामका व्रत करना सोभी पर-मतप कहलाता है तिनमें कृष्णपक्षमें एकएक ग्रास घटातेजाना और शुक्लपक्षमें वढातेजाना इसप्र-कार एक महीनेमें चांद्रायणव्रत होताहै । और पहले तीन दिन संध्याको भोजन करना फिर तीन दिन प्रातःकाल भोजन करना तथा फिर तीन दिन विनामांगे कोई देवे तो भोजन करना और पीछले तीन दिन उपवास कर जाना इस प्रकार बारा दिनमें प्राजापत्य व्रत होताहै तथा बारा दिन जो विलकुल उपवास करना है उसको पराक व्रत कहतेहैं इति ॥ ९ ॥

वने निवासः कंदादिभोजनं वल्कलांबरम् ।
समस्तविषयत्यागस्तपः परमसुच्यते ॥ १० ॥

तथा सर्वदाकाल वनमें निवास करना और कंद मूल फल आदिका भोजन करना तथा संपूर्ण विषयोंका परित्याग करना सो भी परम तप कहलाताहै इति ॥ १० ॥

गुरोः शुश्रूषणं सम्यग् वेदाध्ययनमेव च ।
ब्रह्मचर्यं च राजेन्द्र तपः परमसुच्यते ॥११॥

तथा अपने गुरुकी तनमनधनसें भलीप्रकार सेवा करनी वेदोंका अध्ययन करना और ब्रह्मचर्यका पालन करना सोभी परम तप कहियेहै इति ॥ ११ ॥

एकादशीव्रतं राजंस्तथैवैकाशनं सदा ।
दिवा चाशयनं नित्यमशक्तानामिदं तपः १२

तथा हे राजन्! एकादशीका व्रत करना वा सर्वदाकाल दिनमें एकवार भोजन करना तथा दिनमें कबी सोना नहि यहभी साधारण सुखियालोकोंके लिये परम तप कहियेहै इति ॥ १२ ॥

एवं नानाविधं लोके तपो भवति भूपते ।
यथाधिकारं कुर्वाणा लभंते परमां गतिम् १३

हे भूपते ! इसप्रकारसे अनेकप्रकारका तप धर्मशास्त्रोंमें कथन कियाहै सो अपनीअपनी शक्तिके अनुसार उसको विधिपूर्वक करतेहुये सवी लोक परम गतिको प्राप्त होतेहैं इति ॥१३॥

वह्निना कांचनं तप्तं यथा निर्मलतामियात् ।
तथैव तपसा सर्वे दह्यंते पापराशयः ॥१४॥

जैसे अग्निमें तपानेसें सुवर्ण निर्मल होजाताहै तैसेहि तप करनेसें सर्व पापोंके ढेरोंका नाश होवेहै इति ॥ १४ ॥

शरीरस्य तु ये दोषा ये चेन्द्रियकृता नृप ।
मनःकृताश्च ते सर्वे नश्यंति तपसा द्रुतम् १५

तथा हे नृप ! जितने शरीरके पाप वा दोष होतेहैं वा जितने इन्द्रियोंके पापदोष होतेहैं तथा जितने मनके पापदोष होतेहैं सो सर्वहि तप करनेसें शीघ्रहि नाशको प्राप्त होजातेहैं इति ॥ १५ ॥

दुष्करं क्रियते कार्यं दुर्लभं वस्तु लभ्यते ।
दुर्गमं गम्यते स्थानं तपसा नात्र संशयः १६

तथा जो कार्य अत्यंत कठिन होवे सो तपसें सरल होजाताहै और जो वस्तु जगतमें दुर्लभ होवे सो तपसें सुलभ होजातीहै तथा जो स्थान अत्यंत दुर्गम होवे सोभी तपसें सुगम होजाताहै इसमें संशय नहि है इति ॥ १६ ॥

तपसैवासृजद्ब्रह्मा विश्वमेतचराचरम् ।
तपसैव शिवो लोके सर्वतः पूजितोऽभवत् १७

तथा सृष्टिके आदिकालमें तप करकेहि ब्रह्मा इस चराचर जगत्को रचताभया है और तपसेंहि महादेवभी सर्व जगत्में सर्वलोकोंकरके पूजनीय होता भयाहै इति ॥ १७ ॥

तपसा मुनयः सर्वे प्राप्ता भूप परं पदम् ।
राजानश्च महाराज दिवं याताः सहस्रशः ॥

तथा हे महाराज ! पहलेके व्यास वसिष्ठ आदि सब ऋषि मुनि लोकभी तपसेंहि परम पदको प्राप्त होतेभये हैं और तपसेंहि हजारों राजालोक स्वर्गको जातेभये हैं इति ॥ १८ ॥

तपसा हि ध्रुवो लेभे विष्णोर्दर्शनमुत्तमम् ।
राज्यं च विपुलं लोके परलोके परां गतिम्१९

तथा तपकरकेहि ध्रुवने विष्णुभगवान्का दर्शन पायाथा तथा इसलोकमें वडे भारी राज्यको प्राप्त होकर परलोकमें परम गतिको प्राप्त होताभया इति ॥ १९ ॥

रावणश्च महीपाल तपसाऽऽराध्य शंकरम् ।
त्रैलोक्यं स्ववशं चक्रे लब्ध्वा वरमनुत्तमम्२०

तथा हे महीपाल ! रावणभी तपसे महादेवका आराधन करके वरको प्राप्त भया तीनों लोकोंको अपने वशमें करताभया इति ॥ २० ॥

मार्कंडेयश्च विप्रर्षिस्तपसाऽऽतोष्य माधवम् ।
ददर्श मायां दुर्दर्शां विष्णोर्विश्वविमोहिनीम्॥

तथा ब्रह्मर्षि मार्कंडेयभी तपकरके विष्णुभगवान्को प्रसन्न करके वरको प्राप्त हुया सर्व जगत्के मोहन करनेहारी और सब लोकोंकरके अत्यंत कठिन देखनेयोग्य विष्णुकी मायाको देखता भयाहै इति ॥ २१ ॥

विश्वामित्रश्च राजेन्द्र ब्रह्मर्षित्वमुपागतः ।
तपसा चार्जुनो लेभे शिवादस्त्रमनुत्तमम् २२

तथा हे राजेन्द्र ! विश्वामित्रभी तपकरके क्षत्रियसें ब्रह्मऋषिपनेको प्राप्त होताभया है और अर्जुननेभी तप करकेहि महादेवसें पाशुपत अस्त्रको पाया था इति ॥ २२ ॥

इत्यादयस्त्वसंख्याता नृपा विप्रवरास्तथा ।
स्वंस्वं मनोरथं प्राप्तास्तपसैव नराधिप ॥२३॥

हे नराधिप ! इत्यादि औरभी अनेक असंख्य राजालोक और ब्राह्मणलोक तप करकेहि अपने-अपने मनोरथोंको प्राप्त होते भयेहैं इति ॥ २३ ॥

मयापि दृष्टं राजेन्द्र प्रत्यक्षं तपसः फलम् ।
ततस्त्वया न कर्त्तव्यः संशयोऽत्र कदाचन२४

तथा हे राजेन्द्र ! मैंनेभी तपका फल प्रत्यक्ष देखाहै इसलिये तेरेको उक्त वार्तामें संशय कबी नहि करना चहिये इति ॥ २४ ॥

राजोवाच ।

किमर्थं भवता कुत्र तपस्तप्तं महामते ।
कियत्कालं समाख्याहि परं कौतूहलं हि मे२५

राजा बोले हे महामते भगवन्! आपने कहा कि मैंनेभी तपका फल प्रत्यक्ष देखा है सो आपने किस कामनाकेलिये किस जगापर और कितने कालतक तप किया था सो इस बातके श्रवण करनेका मेरेको बडा भारी उत्साह है सो आप कृपाकरके कथन करो इति ॥ २५ ॥

सुगुह्यमपि शिष्याणां हितार्थं गुरवो मुने।
प्रवदंति यतो ब्रूहि यदि योग्योस्मि सांप्रतम्॥

क्योंकि अत्यंत गुह्य वार्ताकोभी शिष्योंके हितकेलिये गुरुलोक कथन करदेतेहैं तो हे मुनीश्वर! जो मैं उस वार्ताके सुननेके योग्य हूं तो आप कृपा करके कथन करो इति ॥ २६ ॥

ब्रह्मानंद उवाच।

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यथा वृत्तं पुराऽनघ।
समासेन महाराज हरौ भक्तिविवर्धनम् ॥२७॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन्! जैसे पहले वृत्तांत हुयाहै सो मैं तेरेप्रति संक्षेपसे कथन करताहूं सो

हे निष्पाप! तूं श्रवण कर जिसके श्रवण करनेसें विष्णु भगवान्में भक्तिकी वृद्धि होवेहै इति २७

एकदाहमटन्भूमिं बडोदानगरीं प्रति ।
अगमं पृथिवीपाल तीर्थयात्रानिमित्ततः॥२८॥

हे महीपाल! एकसमय तीर्थयात्राके निमित्तसे मैं पृथिवीमें विचरताहुया मार्गमें बडोदा-नाम प्रसिद्ध नगरमें जाताभया इति ॥ २८ ॥

तत्रैकाराममध्यस्थमपश्यं भवनं महत् ।
राज्ञः परमशोभाढ्यं नानावस्तुमनोहरम् २९

तहां एक बगीचेके बीचमें बनाहुया परम शोभाकरके संयुक्त और अंदर नानाप्रकारकी अनेक सुंदर वस्तुवोंसे भराहुया मनोहर एक राजाका महल मैंने देखा इति ॥ २९ ॥

सुंदरैरासनैश्चित्रैः पर्यंकास्तरणादिभिः ।
सर्वतो भूषितं राजन् भोगायतनमुत्तमम् ३०

हे राजन्! सो महल नानाप्रकारके सुंदर आसन गलीचे और दरियां और सुंदर सुंदर चित्र तथा पलंग वा विछोने आदि पदार्थोंकरके

सर्व तरफसें रमणीय और सर्व भोगसामग्रीक-
रके युक्त उत्तम सजाहुया था इति ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा मनसि मे वाञ्छा प्रादुरासीज्जनाधिप ।
राज्यं प्रति महाराज सहसाऽतिगरीयसी ३१

हे जनाधिप महाराज! उस महलके देखनेसें
मेरे मनमें एकदम राज्यभोगनेकी वडी भारी
शीघ्रहि इच्छा उत्पन्न होगई इति ॥ ३१ ॥

अर्वुदाचलमागत्य गुहायां कृतनिश्चयः ।
विष्णोराराधनं राजन्नकार्षं वरहेतवे ॥ ३२ ॥

हे राजन्! तिसके पीछे मैं आवुपहाडमें आया
और मनमें निश्चय करके अचलेश्वर महादेवके
स्थानके समीप एक गुफामें वैठकर (जोकि
भर्तरीकी गुफा कहलातीहै) राज्यप्राप्तिके वास्ते वर
लेनेकेलिये विष्णुभगवान्का आराधन करताभया
इति ॥ ३२ ॥

चतुर्विंशे दिने तत्र निराहारस्य तिष्ठतः ।
मानसार्चनकाले मे मंदिरं दृष्टिमागतम् ३३

सो जव मेरेको चौवीस दिन गुफाके अंदर
निराहार रहकर विष्णुका मानसपूजन और

द्वादशाक्षरमंत्रका जप करते हुये तो चौवीसवें दिन संध्याको मानसपूजन करतेवकत मेरी दृष्टिके सामने उस गुफामें एक मंदिर देखनेमें आया इति ॥ ३३ ॥

तत्रस्था प्रतिमा भूप विष्णोरतिमनोहरा ।
शंखचक्रादिभिः सर्वैर्लक्षणैरुपलक्षिता ॥३४॥

और हे भूप ! तिस मंदिरमें एक विष्णुभगवान्‌की मनोहर सुंदर मूर्ति देखनेमें आई जो कि शंख चक्र गदा पद्म आदि लक्षणोंसहित प्रतीत होरहीथी इति ॥ ३४ ॥

तत्क्षणं पादचारेण साऽऽगता मम संनिधौ ।
जडभावं विहायाशु चेतनत्वमुपागता ॥३५॥

सो मूर्ति उसीक्षण मेरे सामने पास चलकर आई और जडभावको छोडकर चेतन विष्णुस्वरूप होगई इति ॥ ३५ ॥

प्रोवाचेदं वचो राजन्नंगुल्यग्रेण निर्दिशन् ।
धीरगंभीरया वाचा हरिर्मम हितावहम् ॥३६॥

हे राजन् ! तब दहने हाथकी अंगुलिसें निर्देश

करते हुवे विष्णुभगवान्‌ने और उसी मंदिरमें प्रत्यक्ष होकर मेरेको यह परम हितकारक वचन कहा इति ॥२६॥

राज्यमिच्छसि चेद्वत्स राज्यं संसरिष्यसि ।
अन्यथा त्वं तृतीये मां जन्मन्येष्यसि निश्चितम्

हे वत्स बालक ! जो तूं राज्यकी इच्छा करेगा तो सर्वदाकाल इस संसारचक्रमें भ्रमण करता रहेगा और जो राज्यकी इच्छा छोडकर केवल निष्काम होकर मेरा आराधन करेगा तो अबसे तीसरे जन्ममें तूं निश्चयकरके मेरे स्वरूपको प्राप्त होवेगा इति ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वांतर्दधे भूप भगवांस्तच्च मंदिरम् ।
राज्यंप्रति च मे वाञ्छा सद्य एव निवर्तिता ३८

हे भूप ! इस प्रकार कहकरके विष्णु भगवान् और वो मंदिर दोनों अंतर्धान होगये और उसी कालमें मेरे मनसे राज्य भोगनेकी इच्छाभी निवृत्त होगई इति ॥ २८ ॥

ततः प्रभृति मे राजन् सर्वे पूर्णा मनोरथाः ।
ज्ञानं चानुत्तमं भूप जातं मे कृपया हरेः ॥२९॥

हे राजन् ! तबसें धीरेधीरे मेरे मनके सवी मनोरथ पूर्ण होगये और विष्णु भगवान्की कृपासें मेरेको उत्तमतत्त्वज्ञानकीभी प्राप्ति होतीभई है इति ॥ ३९ ॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र यथाशक्ति यथाक्रमम् ।
तपः कुरु त्रितापघ्नमिहामुत्र सुखप्रदम् ॥४०॥

इसलिये हे राजन् ! तूं भी अपनी शक्तिके अनुसार शास्त्रोक्तविधिसें आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक इन तीनों तापोंके नाश करनेहारे तथा इसलोक और परलोकमें परम सुखके देनेहारे तपको कर इति ॥ ४० ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां तपोविधाननिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

सम्यक्तया विधिर्योगिंस्तपसो वर्णितस्त्वया ।
भवदाज्ञानुसारेण करिष्यामि यथाबलम् ॥१॥

राजा बोले हे भगवन् ! आपने तपकी विधि

भली प्रकारसें वर्णन करी सो आपकी आज्ञानुसार मैंभी अपनी शक्तिमुजब अवश्य तप करूंगा इति ॥ १ ॥

श्रुत्वा वरप्रदानं च हरेरद्भुतकर्मणः ।
भक्तिर्मे सुदृढा जाता विष्णोः पादसरोरुहे ॥

तथा आपकेप्रति अद्भुत कर्म करनेहारे विष्णु-भगवान्‌का वरदान श्रवण करके मेरीभी विष्णु-भगवान्‌के चरणकमलोंमें दृढ भक्ति होगईहै इति ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्यं विना क्वापि न जपो न तपस्तथा ।
सिद्धिमायाति तस्मान्मे ब्रूहि तस्यापि लक्षणम् ३

हे भगवन्! आपने पीछे मंत्रजप और तपका विधान निरूपण किया परंतु ब्रह्मचर्यके विना जप वा तप दोनोंकी सिद्धि नहि होसकती इस-लिये अब कृपा करके ब्रह्मचर्यकाभी लक्षण मेरे-प्रति कथन करो इति ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्यं कथं कार्यं कृते तस्मिंश्च किं भवेत् ।
इत्यहं ज्ञातुमिच्छामि त्वत्तो मतिमतांवर ॥४॥

हे सर्वबुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भगवन् ! ब्रह्मचर्य कैसे करना चहिये और उसके करनेसे क्या फल प्राप्त होवेहै मैं इस वार्ताको जानना चाहताहूं सो कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ ४ ॥

सर्वसंशयभेत्तॄणां मन्ये त्वामहमुत्तमम् ।
तस्मात्पुनः पुनः प्रश्नं करोमीति क्षमस्व मे ५

हे भगवन् ! सर्वसंशयोंके छेदन करनेवाले विद्वानोंमें मैं आपको श्रेष्ठ मानताहूं इसलिये मैं आपके पास वारवार प्रश्न करताहूं सो आप मेरेको क्षमा करना इति ॥ ५ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

ब्रह्मचर्यविधानं ते कथयामि महीपते ।
ब्रह्मचर्यं हि सर्वेषां मूलं वै शुभकर्मणाम् ६

ब्रह्मानंदजी बोले हे महीपते राजन् ! अब मैं तेरेको ब्रह्मचर्यका विधान कथन करताहूं क्योंकि सर्व शुभकर्मोंका ब्रह्मचर्यहि मूल है इति ॥ ६ ॥

शिष्याणां सौम्यबुद्धीनां श्रद्धया परिपृच्छताम् ।
उपदेशप्रदानं हि धर्म्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ७ ॥

हे राजन्! जो शिष्यलोक शांतबुद्धिवाले श्रद्धा-पूर्वक प्रश्न करते हों तिनके प्रति उपदेश देना धर्मयुक्त होता है ऐसा बुद्धिमान् ऋषिलोकोंने कथन किया है इति ॥ ७ ॥

तस्मादशंकचित्तेन प्रष्टव्योऽहं त्वया नृप।
यथाकाममशेषेण प्रवक्ष्यामि तवानघ ॥ ८ ॥

इसलिये हे नृप! निःशंकचित्तहोकर तेरेको मेरेसे तेरी इच्छाअनुसार प्रश्न करना चहिये हे निष्पाप! मैं तेरेको संपूर्ण रीतिसें कथन करूंगा इति ॥ ८ ॥

शिश्नेन्द्रियनिरोधेन सदा सर्वत्र भूपते।
सर्वथा मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम् ॥९॥

हे भूपते! शिश्न इन्द्रियके निरोधपूर्वक सर्वदा काल सर्वत्र सर्वप्रकारसें जो मैथुनका परित्याग करना है सो ब्रह्मचर्य ऋषिलोकोंनें कथन किया है अर्थात् उसको ब्रह्मचर्य कहतेहैं इति ॥ ९ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां शिश्नः परमदुर्जयः।
तस्य निग्रहणं राजन् परमं धर्मकारणम् ॥१०॥

हे राजन्! सर्व इन्द्रियोंसे शिश्नइन्द्रिय वडी दुर्जय है इसलिये उसके निग्रह करनेसें परम श्रेष्ठ धर्मकी प्राप्ति होतीहै इति ॥ १० ॥

वशे यस्य जगत्सर्वं ससुरासुरमानवम् ।
तज्जयं कुर्वतो भूप किं न सिद्ध्यति भूतले ११

हे भूप! जिस शिश्नइन्द्रियके देवता दैत्य मनुष्य आदि संपूर्ण जगत् वशीभूत होरहा है तो तिसके जीतनेवाले पुरुषको पृथिवीमें क्यां वस्तु सिद्ध नहि होसकती है अर्थात् सर्व मनोवाञ्छित वस्तुवोंकी सिद्धि हो सकेहै इति ॥११॥

विद्याभ्यासे च मंत्राणामनुष्ठाने तथैव च ।
तपःकाले विशेषेण ब्रह्मचर्यं विधीयते ॥१२॥

विद्याके अभ्यास करनेमें और मंत्रोंके अनुष्ठान पुरश्चरण करनेमें तथा विशेषकरके तप करनेमें ब्रह्मचर्यको पालन करनेका विधान ऋषिलोकोंनें कथन किया है इति ॥ १२ ॥

अष्टादशाब्दपर्यंतं नराणां नरनायक ।
द्वादशाब्दं च नारीणां ब्रह्मचर्यावधिर्मतः १३

हे नरनायक राजन्! पुरुषोंको अठारा वर्षपर्यंत और स्त्रियोंको बारा वर्षपर्यंत ब्रह्मचर्य रखनेकी अवधि समझनी चहिये इति ॥ १३ ॥

विद्याभ्यासादिहेतोस्तु ततोऽधिकमपीष्यते ।
पंचविंशतिवर्षाणि षोडशाब्दानि च क्रमात् ॥

परंतु विद्याभ्यास वा कोई गुण सीखने आदि कारणसें तिससें अधिककालभी ब्रह्मचर्यकी अवधि होसकतीहै जैसे कि पुरुषोंके लिये पचीस वर्ष और स्त्रियोंके लिये सोला वर्षकी अवधि समझनी चहिये इति ॥ १४ ॥

ततः पश्चान्महीपाल न कश्चिन्नियमो भवेत् ।
ब्रह्मचर्यं प्रति क्वापि क्रियते वा न वा पुनः ॥

हे महीपाल! तिसके उपरांत पुरुष और स्त्रियोंके लिये ब्रह्मचर्य रखनेका कुछ नियम नहि है फिर तो किसीकी मरजी होवे सो रखो अथवा नहि रखो इति ॥ १५ ॥

केचित्संन्यासिनो लोके योगिनश्च तपस्विनः ।
यावज्जीवं चरंतीह ब्रह्मचर्यं निरंतरम् ॥ १६ ॥

परंतु कोई एक संन्यासी वा योगी तपस्वी लोक योगसाधन करनेकेलिये वा ब्रह्मज्ञानविचार करनेकेलिये सारी उमरापर्यंत निरंतरहि ब्रह्मचर्यका पालन करतेहैं इति ॥ १६ ॥

गृहस्थैरपि सर्वत्र राजन्पर्वसु सर्वदा ।
पालनीयं विशेषेण ब्रह्मचर्यं यथोदितम् १७

तथा हे राजन् ! गृहस्थ लोकोंकोभी पूर्णमासी एकादशी अमावस्या आदि पर्वके दिनोंमें पूर्वोक्त रीतिसें ब्रह्मचर्यका अवश्य पालन करना चहिये इति ॥ १७ ॥

सर्वैरपि जनैर्नित्यं दिवा वै ब्रह्मचारिभिः ।
भवितव्यं नराधीश श्रेयस्कामैर्निरंतरम् १८

किंच हे नराधीश ! अपने कल्याणकी इच्छा-वाले सबी लोकोंको सर्वदाकाल दिनमें अवश्य ब्रह्मचारी रहना चहिये अर्थात् दिनमें कबी किसी पुरुषकोभी स्त्रीसंगम नहि करना चहिये क्योंकि उसमें पापकी प्राप्ति होतीहै इति ॥ १८ ॥

ब्रह्मचर्येण राजेन्द्र वर्धते बलमुत्तमम् ।
शरीरस्येन्द्रियाणां च मनसश्च न संशयः १९

हे राजेन्द्र! ब्रह्मचर्य पालन करनेसें शरीर और इन्द्रियां तथा मनके बलकी उत्तम वृद्धि होवेहै इति ॥ १९ ॥

बलेन युक्तो यत्कार्यं कर्त्तुमिच्छति धीरधीः।
सत्वरं सिद्धिमायाति नात्र कार्या विचारणा॥

और शरीर इन्द्रिय और मनके बलकरके युक्त भया धैर्यवान् पुरुष जिस कार्यको करना चाहताहै तो उसको उसकी शीघ्रहि सिद्धि होजावेहै अर्थात् वो कार्य शीघ्रहि सिद्ध होजाताहै इति ॥ २० ॥

ब्रह्मचर्येण सिद्ध्यंति मंत्राः सर्वव्रतानि च ।
तपश्चर्या च योगश्च नान्यथा पृथिवीपते ॥२१॥

हे पृथिवीपते! ब्रह्मचर्यसेंहि सर्वप्रकारके मंत्रोंकी और व्रतोंकी तथा तपश्चर्याकी और योगाभ्यासकी सिद्धि होवेहै ब्रह्मचर्यके विना नहि होवेहै इति ॥ २१ ॥

ब्रह्मचर्यमकृत्वा यस्तपश्चर्यादितत्परः।
तस्य सर्वं क्षरत्याशु भिन्नभांडाज्जलं यथा २२

और जो पुरुष ब्रह्मचर्य नहि रखके तपश्चर्या मंत्रसाधन वा योगाभ्यास आदि करता है, तो तिसका फूटे घटेसें जलकी न्यांई सो सर्व जप तप आदि वह जाताहै अर्थात् उसकी यथार्थसिद्धि नहि होतीहै इति ॥ २२ ॥

प्रथमं रक्षयित्वाऽतो ब्रह्मचर्यं मनीषिणः ।
पश्चादेव प्रवर्तंते तपोयोगजपादिषु ॥ २३ ॥

इसलिये बुद्धिमान् लोक पहले ब्रह्मचर्यको रख करके हि पीछे तपश्चर्या योगाभ्यास वा मंत्रोंका अनुष्ठान आदि कार्य सिद्ध करनेमें प्रवृत्त होतेहैं इति ॥ २३ ॥

ब्रह्मचर्यस्य रक्षार्थं ब्रह्मणस्तनया नृप ।
बालरूपाश्चरंत्यत्र त्रैलोक्ये सनकादयः ॥२४॥

हे नृप ! ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लियेहि ब्रह्माके सनक सनंदन आदि चारों पुत्र इस त्रिलोकीमें बालकरूपसें बिचरतेहैं इति ॥ २४ ॥

ब्रह्मचर्यप्रभावेण हनुमानंजनीसुतः ।
महाबलयुतःश्रीमान् सर्वतः पूजितोऽभवत् ॥

तथा ब्रह्मचर्यके प्रभावसेहि अंजनीका पुत्र हनुमान् महाबल और शोभाको प्राप्त हुया जगत्में सर्वजगा पूज्यपनेको प्राप्त होताभयाहै इति ॥ २५ ॥

जरत्कारुश्च शुद्धात्मा कूपे वनचरः सदा ।
पितॄणां दर्शनं प्राप्तो ब्रह्मचर्येण भूपते ॥२६॥

तथा हे भूपते! महाभारतमें लिखाहै कि जरत्कार नामका ऋषि ब्रह्मचर्यके प्रभावसें वनमें विचरताहुया कूवेके अंदर अपने पितरोंका दर्शन करताभया इति ॥ २६ ॥

भीष्मश्च ब्रह्मचर्येण प्राप्तो ज्ञानमनुत्तमम् ।
स्वच्छंदमरणं चैव लोकेऽस्मिन्नरपुंगव ॥ २७ ॥

तथा हे नरपुंगव कहिये सर्व नरोंमें श्रेष्ठ राजन्! भीष्म पितामहभी ब्रह्मचर्यसेहि उत्तम ज्ञानको और स्वतंत्र मृत्युको इसलोकमें प्राप्त होताभयाहै इति ॥ २७ ॥

जनकं ज्ञानसंवादे सभायामजयत्पुरा ।
योगाभ्यासबलोपेता सुलभा ब्रह्मचारिणी२८

तथा यहभी महाभारतमें लिखाहै कि जनकराजाकी सभामें योगवलसें युक्त भई सुलभानाम ब्रह्मचारिणीनें ब्रह्मचर्यके प्रभावसें जनकराजाको ज्ञानचर्चामें जीतलिया था इति ॥२८॥

गार्गी चापि महाराज ब्रह्मचर्येण धीमती ।
याज्ञवल्क्यात्परं ज्ञानं योगं चाध्यगमत्पुरा २९

तथा हे महाराज! बुद्धिमती गार्गी नामकी स्त्रीभी ब्रह्मचर्यसेंहि याज्ञवल्क्य ऋषिसें परम वेदांतका ज्ञान और योगविद्याको प्राप्त होतीभई है इति ॥ २९ ॥

इत्येवं बहवो राजन् नरा नार्यश्च निश्चितम् ।
ब्रह्मचर्येण संप्राप्ताः शतशस्तु परां गतिम् ॥

हे राजन्! इसप्रकार अनेक सेंकडोंहि पुरुष और स्त्रियां निश्चय करके ब्रह्मचर्यसें परम गतिको प्राप्त होतेभये हैं इति ॥ ३० ॥

अल्पाशनं तथैकांतनिवासश्चाल्पनिद्रता ।
योषितां संगतित्यागो ब्रह्मचर्यस्य हेतवः ३१

थोडा भोजन करना एकांत स्थानमें निवास

करना और थोडा सोना तथा स्त्रियोंकी संग-तिका त्याग करना इतनी वातोंसें ब्रह्मचर्यका रक्षण ठीक होवेहै इति ॥ ३१ ॥

ब्रह्मचर्यं परं पुण्यं ब्रह्मचर्यं परं तपः ।
ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं परं पदम् ॥३२॥

ब्रह्मचर्यहि परमपुण्य है ब्रह्मचर्यहि परमतप है और ब्रह्मचर्यहि परमज्ञान है तथा ब्रह्मचर्यहि परमपद मोक्षके देनेवाला है इति ॥ ३२ ॥

तस्माद्राजन्निषेवस्व ब्रह्मचर्यं निरंतरम् ।
तेन ज्ञानं च योगं च मोक्षं च प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥

इसलिये हे राजन् ! तूंभी निरंतर ब्रह्मचर्यका पालन कर तो तिसकरके तूं ज्ञान और योग तथा मोक्षपदको प्राप्त होवेगा इति ॥ ३३ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां ब्रह्मचर्यविधाननिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

भगवन् ब्रह्मचर्यस्य ज्ञातं सम्यक्कया फलम् ।
सत्यस्यापि च मे ब्रूहि लक्षणं विधिसंयुतम्॥१॥

राजा बोले हे भगवन् ! आपकी कृपासें मैंने ब्रह्मचर्यका फल भलीप्रकारसें जानलिया है अब सत्यका लक्षणभी कृपा करके मेरेप्रति विधिसहित कथन करो इति ॥ १ ॥

श्रुतं मया विभो पूर्वं सत्यं धर्मस्य कारणम् ।
ततोऽहं श्रोतुमिच्छामि विशेषेण तवाननात् २

हे विभो ! मैंने पहले सुना था कि सत्यभी धर्मका कारण है इसलिये अब विशेषकरके तिसका लक्षण आपके मुखसें श्रवण कियाचाहता हूं इति ॥ २ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

सत्यं जयति नासत्यं वेदस्येति वचः स्फुटम् ।
तस्मात्सत्यं परं धर्मं प्रवदंति मनीषिणः ॥ ३ ॥

ब्रह्मानंदजी बोले कि हे राजन्! (सत्यमेव जयते नानृतं) सर्वदाकाल सब जगा सत्यकीहि जय होवेहै झूठकी नहि यह वेदका स्पष्ट वाक्य है इस लिये बुद्धिमान् ऋषिलोक सत्यको परमधर्म कहतेहैं इति ॥ ३ ॥

तस्याहं लक्षणं भूप विधिं चापि वदामि ते ।
यथा सत्येन धर्मस्य वृद्धिर्भवति शाश्वती ॥४॥

हे भूप! तिस सत्यका लक्षण और विधि मैं तेरेको कथन करताहूं जिसप्रकारसे सत्यसे निरंतर धर्मकी वृद्धि होवेहै इति ॥ ४ ॥

यथाश्रुतं यथादृष्टं यथाचानुमितं भवेत् ।
तथैवान्यत्र वक्तव्यमिति सत्यं समीरितम् ॥५॥

जैसे आप सुना हो वा देखा हो तथा जैसा अनुमान किया हो उसी प्रकारका जो यथार्थ वचन दूसरेके प्रति कहना है सो सत्य कहिये है इति ॥ ५ ॥

श्रवणे दर्शने राजन्ननुमाने तथैव च ।
भ्रमो यस्य भवेद्यत्र नच तत्सत्यमुच्यते ॥६॥

हे राजन्! जिस पुरुषके सुननेमें वा देखनेमें तथा अनुमान करनेमें भ्रांति होवे तो उसका वचन सत्य नहि कहाजावे है इति ॥ ६ ॥

आप्तेभ्यः श्रवणं यस्य दर्शनं चानुभूतिजम् ।
अनुमानं च निर्दोषं सत्यं तस्य वचो भवेत् ७

और जिस पुरुषनें यथार्थ वक्ता श्रेष्ठ पुरुषोंके मुखसें सुना हो और यथार्थ अपने अनुभवसे देखा हो तथा जिसका अनुमानभी सर्वदोषोंसें रहित होवे तो उसका वचन सत्य मानाजावेहै इति ॥ ७ ॥

सत्यं ब्रूयाद्विचारेण जीवानां हितकारकम् ।
तेषां यत्राहितं राजन् न तत्सत्यं प्रशस्यते॥८॥

हे राजन्! सत्यको सब जगा विचारके बोलना चहिये क्योंकि जहां सत्य बोलनेसें दूसरे जीवोंकी भलाई होवे है वो सत्य ठीक होता है और जहां बोलनेसें दूसरे जीवोंकी बुराई वा हानि हो जावे तो वो सत्य ठीक नहि समझाजावेहै इति ॥ ८ ॥

जीवानां हितकारित्वेऽप्यसत्यं न वदेत्कचित् ।
हितकारि च सत्यं च वक्तव्यं तन्निरंतरम् ॥९॥

तथा जो वचन दूसरे जीवोंका हितकारी तो होवे परंतु असत्य होवे तो वोभी कवी नहि कहना चहिये किंतु सर्वदाकाल सर्व जीवोंका हितकारी और सत्यवचन बोलना चहिये इति ॥ ९ ॥

हिताहितप्रसंगे तु बलाबलविचारणम् ।
बलाधिक्यं भवेद्यत्र तत्र स्थितिरुदीरिता १०

और जहां बोलनेमें दूसरे जीवोंका हित और अहित दोनों होते होवें तो वहां धर्मका बला-बल विचारणा चहिये सो जिसतरफ धर्मका अधिक बल होवे उसीतरफ स्थिर रहना चहिये अर्थात् उसी तरफकी बात बोलना चहिये इति १०

द्वयोस्तुल्ये तु मौनस्य वरमाहुर्विधारणम् ।
मौनस्याशक्यतायां च वक्तव्यं यत्समंजसम् ॥

और जहां हित और अहित दोनों बराबर होते होवें तो वहा मौनका धारण करनाहि मुनि-लोकोंने श्रेष्ठ कथन किया है अर्थात् वहां मौन

धारण करलेना चहिये किसीकेभी पक्षकी वात नहि कहनी चहिये और जहां राजद्वार आदि स्थानमें मौन रहना असंभव होवे अर्थात् पर-वश वोलनाहि पडे तो वहा उस समयअनुसार जो वोलना उचित वा न्यायसंगत होवे वोही वोलना चहिये इति ॥ ११ ॥

सत्यस्य भाषणं लोके दुष्करं परिकीर्तितम् ।
यतः स्वार्थपरा भूप प्रवृत्तिर्जगतोऽखिला १२

हे भूप! जगत्में सत्यका वोलना वडाहि कठिन है क्योंकि जगत्के सर्व जीवोंकी अपने स्वार्थके लियेहि सर्वजगा सव कामोंमें प्रवृत्ति देखनेमें आतीहै इति ॥ १२ ॥

स्वार्थमूढा न जानंति सत्यं वाप्यनृतं नृप ।
महतामपि संदृष्टं स्वार्थेनासत्यभाषणम् १३

क्योंकि स्वार्थसें अंध भये लोक सत्य वा अ-सत्यको नहि जानतेहैं केवल अपने स्वार्थको देखतेहैं इसीलिये स्वार्थके वशसें वडेवडे लोकभी असत्य भाषण करते देखनेमें आयेहैं इति ॥१३॥

अहल्यागृहमागत्य मुनिरूपधरो नृप ।
गौतमोऽहमिति प्राह कामाक्रांतः शचीपतिः ॥

हे नृप! जैसे कि रामायणमें लिखा है कि गौतम मुनिका रूप बनाकर कामके वशीभूत हुये इन्द्रने अहल्याके घरमें जाकर मैं गौतम हूं ऐसा असत्य भाषण कियाथा इति ॥ १४ ॥

कर्णश्चापि महाशूरो धनुर्विद्योपलब्धये ।
गुरोरग्रे महाराज विप्रोऽहमिति चाब्रवीत् १५

तथा हे महाराज! महाभारतमें लिखा है कि महाशूर बीर कर्णनेभी धनुषविद्या सीखनेके लिये अपने गुरु परशुरामके पास मैं ब्राह्मण हूं इसप्रकार असत्य भाषण कियाथा इति ॥ १५ ॥

स्वार्थवद्भयमप्याहुरसत्ये कारणं तथा ।
दंडभीतो वदेद्राजन्नसत्यं निर्बलो जनः॥१६॥

तैसेहि हे राजन्! स्वार्थके समान भयभी असत्य बोलनेमें कारण होता है क्योंकि दंडसें भय-भीत हुया निर्बल पुरुष असत्य बोलदेताहै इति ॥

तथैवाज्ञानमप्युक्तं हेतुर्मिथ्याभिभाषणे ।
ज्ञानहीनो न जानाति सत्यासत्यविनिर्णयम् ॥

तैसेहि अज्ञानभी असत्य बोलनेमें कारण होताहै क्योंकि ज्ञानविचारहीन पुरुष सत्य क्या है और असत्य क्या है इस बातका निर्णय नहि जान सकताहै इति ॥ १७ ॥

यस्त्यजेन्निखिलं स्वार्थं निर्भयो यश्च सर्वतः ।
ज्ञानवांश्च भवेल्लोके स सत्यं वक्तुमर्हति ॥१८॥

इसलिये जो पुरुष जगत्में अपने सब स्वार्थको छोडदेवे और जो सर्वतरफसें निर्भय होवे तथा विचारवान्भी होवे सोई सत्य भाषण करसकता है दूसरा नहि इति ॥ १८ ॥

तस्मात्सत्यं वदेद्धीमान् सर्वकार्येषु सर्वदा ।
ज्ञात्वा बलाबलं सम्यक् सर्वजीवहितावहम् ॥

इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको सर्वत्र धर्मका बलाबल विचार करके सर्व कार्योंमें सर्व जीवोंका हितकारक सत्यभाषण करना चहिये इति ॥१९॥

असत्यभाषिणो लोके न प्रतिष्ठा प्रजायते।
न विश्वासो न लाभश्च निंद्यो भवति सर्वदा ॥

क्योंकि असत्य बोलनेवाले पुरुषकी लोकोंमें प्रतिष्ठा और विश्वास तथा प्रतीति नहि रहतीहै और प्रतीति चलेजानेसें किसी प्रकारका उसको व्यापार आदिसे लाभभी नहि होवेहै तथा सर्व जगा उसकी निंदा होवेहै इति ॥२०॥

परलोके च राजेन्द्र न सुखं न शुभां गतिम्।
लभंते निरये वासं नित्यं मिथ्याभिभाषिणः ॥

तथा हे राजेन्द्र! असत्य बोलनेवालोंको परलोकमेंभी किसी प्रकारके सुख वा उत्तम गतिकी प्राप्ति नहि होवेहै किंतु तिनका निरंतर नरकमें निवास होवेहै इति ॥ २१ ॥

सत्यवादी लभेतात्र मानं कीर्तिं च शाश्वतीम्।
परलोके सुखं पूर्णं गतिं चानुत्तमां नृप ॥२२॥

हे नृप! जो लोक हमेशां सत्यभाषण करतेहैं वो इस लोकमें मान प्रतिष्ठा वा निरंतर कीर्तिको

प्राप्त होतेहैं और परलोकमें परम सुख तथा उत्तम गतिको प्राप्त होतेहैं इति ॥ २२ ॥

आपत्कालेपि रक्षंति सत्यं धर्मधुरंधराः ।
प्राप्यापि दुःखमत्यंतं न चलंति ततो नृप २३

इसलिये हे नृप! धर्मके धारण करनेहारे धीरजवान् पुरुष आपत्कालमेंभी सत्यकी रक्षा करतेहैं और अत्यंत दुःखको प्राप्त होयकरभी सत्यसे चलायमान नहि होतेहैं इति ॥ २३ ॥

यथा दशरथः श्रीमान् राजा धर्मपरायणः ।
सत्यार्थे प्राणमुत्सृज्य गतः स्वर्गपदं परम् २४

जैसे कि श्रीमान् धर्मपरायण राजा दशरथ सत्यकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंको छोडकर परम श्रेष्ठ स्वर्गपदको प्राप्त होताभयाहै इति २४

हरिश्चन्द्रश्च सत्यार्थे दत्त्वा सर्वस्वमात्मनः ।
परं दुःखमनुप्राप्तो मृत्योरप्यधिकं पुनः ॥२५॥

तथा राजा हरिश्चन्द्रभी सत्यकी रक्षाके लिये विश्वामित्रके प्रति अपना सर्वस्व देकरके मरणेसेभी अधिक दुःखको प्राप्त होताभयाहै इति २५

युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा सत्यार्थे राज्यमुत्तमम्।
दत्त्वा दुर्योधनायोग्रं वने क्लेशमुपेयिवान् २६

तथा धर्मात्मा युधिष्ठिरभी सत्यकी रक्षाके लिये अपना उत्तम राज्य दुर्योधनको देकरके आप वनवासमें अत्यंत क्लेशको प्राप्त होताभयाहै इति ॥ २६ ॥

तस्मात्सत्यं न त्यक्तव्यमापद्यपि कदाचन ।
सर्वापद्भ्यो हि वक्तारं सत्यं रक्षति रक्षितम् २७

इसलिये आपत्कालमेंभी कदाचित् सत्यका त्याग नहि करना चहिये क्योंकि सत्यकी रक्षा करनेवालेकी सर्व आपत्तियोंसे सत्यहि रक्षा करता है इति ॥ २७ ॥

सत्येनैव तपेत्सूर्यश्चन्द्रः सत्येन शीतलः ।
सत्येन निश्चला भूमिः स्थिराः सत्येन भूधराः ॥

सो सत्यकरकेहि सूर्य तपता है और सत्यकरकेहि चन्द्रमा शीतल है सत्यकरकेहि पृथिवी निश्चल होरहीहै और सत्यकरकेहि सब पर्वत स्थिर हो रहेहैं इति ॥ २८ ॥

सत्येन धृतमर्यादः समुद्रः पृथिवीपते ।
वहंति सत्यतो नद्यो नियमेन निरंतरम् २९

तथा हे पृथिवीपते ! सत्यकरकेहि समुद्र मर्यादामें रहताहै और सत्यकरकेहि गंगा यमुना आदि सर्व नदियां निरंतर वहतीहैं इति ॥२९॥

सत्येन विधृतास्तारा न पतंति कदाचन ।
सत्येनैव च जीवंति चिरं भूप महर्षयः ३०

तथा हे भूप ! सत्यकरकेहि आकाशमें तारागण धारण होरहेहैं कबी नीचे नहि गिरतेहैं और सत्यकरके ऋषिलोक चिरकालतक जीतेहैं इति ॥ ३० ॥

सत्यं स्वर्गस्य सोपानं सत्यं ब्रह्मपदप्रदम् ।
सत्येन लभते मोक्षं सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ३१

तथा सत्यहि स्वर्गमें जानेकी सीढी है और सत्यहि ब्रह्मके परमपदके देनेवाला है और सत्यसें हि मोक्षकी प्राप्ति होतीहै किंच सत्यमेंहि सर्व पदार्थ रहतेहैं अर्थात् सत्यसें सर्व पदार्थोंकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ ३१ ॥

तस्माद्राजन्सदा सत्ये सुस्थिरं कुरु मानसम् ।
सर्वकार्येषु सर्वत्र सत्यं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३२॥

इसलिये हे राजन्! तूंभी सर्वदाकाल सर्व कार्योंमें सत्यमेंहि मनको स्थिर कर क्योंकि सत्यहि सनातन ब्रह्मरूप है इति ॥ ३२ ॥

इति ब्रह्मानंदगीतायां सत्यधर्मनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

भगवन्ब्रह्मचर्येण सत्येनापि युतः पुमान् ।
किं कुर्यादात्ममोक्षार्थी यत्नं यतिवरोत्तमम्१॥

राजा बोले हे भगवन्! पूर्वोक्त रीतिसें ब्रह्मचर्य और सत्यकरके युक्त हुये मोक्षकी कामनावाले पुरुषको मोक्षकी प्राप्तिके लिये क्या उत्तम यत्न करना चहिये सो हे सर्व यतियोंमें श्रेष्ठ आप मेरे प्रति कथन करो इति ॥ १ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

मोक्षार्थं बहवो राजन्नुपाया मुनिपुंगवैः ।
कथिता मोक्षशास्त्रेषु तेषां मुख्यमिमं शृणु ॥२॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन्! वेदांतआदि मोक्षशास्त्रोंमें मोक्षकी प्राप्तिकेलिये अनेक उपाय व्यास वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनिलोकोंने कथन किये हैं सो तिन सर्वमेंसे एक मुख्य उपाय मैं तेरेको कहता हूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ २ ॥

ईश्वराराधनं लोके विद्धि यत्नमनुत्तमम् ।
संसारार्णवमग्नानां पोतं दृढमनामयम् ॥ ३ ॥

हे राजन्! मोक्षप्राप्तिके लिये इसलोकमें एक ईश्वरका आराधन करनाहि परम उत्तम यत्न जानना चहिये सो ईश्वरका आराधन संसाररूप समुद्रमें पडेहुये जीवोंके लिये दृढ नौकाके समान है इति ॥ ३ ॥

ईश्वरेणैव संसृष्टा मायेयं विश्वमोहिनी ।
तस्यैव कृपया भूप विलयं याति नान्यथा ॥४॥

हे भूप! सर्व संसारके मोहन करनेवाली माया ईश्वरकी रचीहुई है सो उसीकी कृपासे नाशको प्राप्त होती है दूसरे उपायसें नहि ऐसा समझना चहिये इति ॥ ४ ॥

राजोवाच ।

ईश्वरस्य स्वरूपं तु वद मे वदतां वर ।
यज्ज्ञात्वाऽऽराधनं तस्य कुर्यां कल्याणकारणम्

राजा बोले हे वदतांवर सर्व समाधान करनेवालोंमें श्रेष्ठ वक्ता भगवन्! आपने कहा कि ईश्वरका आराधन करना चहिये सो ईश्वरका क्या स्वरूप है सो मेरेप्रति कृपा करके कथन करो जिसको मैं जानकरके अपने कल्याणके लिये ईश्वरका आराधन करूं इति ॥ ५ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

ईश्वरस्य स्वरूपं तु द्विविधं परिकीर्तितम् ।
सगुणं निर्गुणं चैव व्यक्ताव्यक्तविभेदतः ६

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन्! ईश्वरका व्यक्त और अव्यक्त इसभेदसें सगुण और निर्गुण दो

प्रकारका रूप वेद और शास्त्रोंमें कथन किया है इति ॥ ६ ॥

व्यक्तं स्याद्देवतारूपमव्यक्तं सर्वगं सदा ।
क्रमेणाराधनं चापि तयोर्भवति भूपते ॥ ७ ॥

हे भूपते ! तिनमें देवतारूप तो ईश्वरका व्यक्त-स्वरूप कहियेहै और सर्वव्यापकरूप अव्यक्त कहियेहै तिन दोनोंका आराधनभी क्रमसें होवेहै अर्थात् पहले देवतास्वरूपका आराधन होवेहै और पीछे सर्वव्यापकरूपका होवेहै इति ॥ ७ ॥

राजोवाच ।

देवताराधनं पूर्वं ब्रूहि मे यतिपुंगव ।
तत्पश्चान्निर्गुणस्यापि वक्तुमर्हसि निर्णयम् ८

राजा बोले हे सर्व यतियोंमें श्रेष्ठ भगवन् ! पहले आप मेरेको देवतारूपका आराधन कथन करो और फिर पीछे ईश्वरके निर्गुणस्वरूपकाभी आराधन आदिका निर्णय कथन करन चहिये इति ॥ ८ ॥

देवानामुत्तमो देवः को भवेद्भवतो मतः ।
आराधनविधिस्तस्य कीदृशः परिकीर्तितः ९

सो सर्व देवतायोंमें कौन देव श्रेष्ठ आपको माननीय है और उसके आराधन करनेकी क्या विधि शास्त्रोंमें कथन करी है सो कृपा करके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ९ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

भूपते सर्वदेवानां द्वावेवानुत्तमौ मतौ ।
विष्णुश्चापि शिवश्चैव पूजितौ मुनिभिर्मुहुः ॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे भूपते! सर्व देवतायोंमें दो देवताहि जगत्में सर्वजगा श्रेष्ठ माने हुये हैं एक विष्णु और दूसरा शिव क्यों कि इन दोनोंकाहि विशेषकरके ऋषिमुनिलोकोंने वारंवार पूजन वा आराधन किया है इति ॥ १० ॥

योविष्णुःसशिवःप्रोक्तो यःशिवोविष्णुरेवसः ।
एकमेव स्वरूपं तु द्विविधं परिदृश्यते ॥ ११ ॥

जो विष्णु है सोई शिव है और जो शिव है

सोई विष्णु है अर्थात् दोनोंमें कुछ भेद नहि है एकहि स्वरूप दो प्रकारका जगत्में देखनेमें आता है इति ॥ ११ ॥

तत्रैकस्य तु देवस्य विष्णोरत्र महीपते ।
आराधनविधिं वक्ष्ये तद्वज्ज्ञेयः शिवस्य च १२

हे भूपते ! तिन दोनोंमें एक विष्णु भगवा॰ न्के आराधनकी विधि यहां मैं तेरेको कथन करता हूं सो तूं श्रवण कर और तैसेहि शिवके आराधनमेंभी जानलेनी चहिये इति ॥ १२ ॥

गुरोः सकाशात्संगृह्य वैष्णवं मंत्रमुत्तमम् ।
अष्टाक्षरं महाराज द्वादशाक्षरमेव वा ॥ १३ ॥

हे महाराज ! उपासक पुरुषको चहिये कि प्रथम गुरुके पाससें विष्णुके अष्टाक्षर (ओंनमो॰ नारायणाय) अथवा द्वादशाक्षर (ओंनमोभग- वते वासुदेवाय) उत्तम मंत्रका विधिपूर्वक ग्रहण करे इति ॥ १३ ॥

प्रातः स्नानादिकं कृत्वा प्रविश्य च शुभासने ।
आचम्य च ततः कुर्यात् प्राणायामत्रयं बुधः ॥

तदनंतर बुद्धिमान् पुरुष प्रातःकाल स्नान शौच आदि करके पवित्र होकर शुभ आसनपर बैठ करके तीनवार आचमन तथा तीन प्राणायाम करे इति ॥ १४ ॥

मंत्रन्यासं विधायादौ कुर्यान्मानसपूजनम् ।
विष्णोरेकाग्रचित्तेन तद्विधानमिहोच्यते ॥१५॥

तथा पहले मंत्रका न्यास ध्यान करके पीछे विष्णु भगवान्‌का मानसपूजन करे सो तिस मानसपूजनकी विधि संक्षेपसें यहां निरूपण करतेहैं इति ॥ १५ ॥

स्वकीयहृदये ध्यायेत् क्षीरसागरमुत्तमम् ।
तन्मध्ये श्वेतद्वीपं तु कल्पवृक्षैः समावृतम् ॥

प्रथम अपने हृदयकमलमें स्वच्छ क्षीरसमुद्रका ध्यान करके तिसके मध्यमें श्वेतद्वीपका चिंतन करे और श्वेतद्वीपके वीचमें एक कल्पवृक्षोंके वडे भारी वगीचेका ध्यान करे इति १६

तन्मध्ये चिंतयेद्धीमान् स्वर्णस्य भवनं महत् ।
चतुर्द्वारं मणिस्तंभैरनेकैः परितो धृतम् ॥ १७॥

तथा बुद्धिमान् उपासक पुरुष तिस
मध्यमें एक वडे भारी स्वर्णके महलका
करे तिस महलके चारों दिशायोंमें चार
हैं और सो महल चारों तरफसें अनेक म
थंभोंकरके धारण किया हुया है इति ॥ १७

नानावातायनै रम्यं रत्नश्रेणीविमंडितम् ।
कोमलास्तरणोपेतं दिव्यवस्तुमनोहरम् ॥ १

तथा सो महल अनेक वारियां झरो
रमणीय है और उसमें रत्नोंकी पैडियां जडी
हैं तथा कोमल कोमल सुंदर दिव्य विछोने वि
हुये हैं और अनेक प्रकारकी दिव्य वस्तुवों
सजाहुया अत्यंत मनोहर है इति ॥ १८ ॥

रम्यपक्षिगणाघुष्टं भ्रमरैरुपगुंजितम् ।
सुधासरोवरैः शीतं संवीतं कुसुमाकरैः ॥१९॥

तथा उस महलके चारोंतरफ सुंदर सुंदर
पक्षिगण मधुर मधुर बोली बोल रहेहैं और भ्रमर
फूलोंपर गुंजार कररहेहैं और महलके आसपास
अमृतके शीतल सरोवर भरेहुये हैं तथा सर्व

तरफ दिव्य पुष्पोंके वृक्ष वा गुच्छे शोभायमान होरहेहैं इति ॥ १९ ॥

तस्य मध्यगतं ध्यायेत् पर्यंकं हेमनिर्मितम् ।
नानामणिगणैर्दिव्यैर्निचितं सर्वतः शुभम् २०

तिस महलके वीचमें एक कांचनमय सिंहासनक ध्यान करना चहिये जो कि सर्वतरफसें सुंदर और अनेक दिव्यमणियोंकरके जडाहुया है इति ॥२०॥

चतुर्वेदचतुष्पादं गुणितं तत्त्वरज्जुभिः ।
सत्यास्तरणशोभाढ्यं ब्रह्मज्ञानोपवर्हणम् ॥२१॥

उस सिंहासनके चारों वेदरूप चार पाये हैं और पांचतत्त्वरूप रेश्मकी रस्सियोंसें वो सिंहासन बुना हुया है और तिसके ऊपर सत्यरूप सुंदर विस्तर विछा हुया शोभायमान होरहाहै और ब्रह्मज्ञानरूप सिराना लगाहुयाहै ऐसा चिंतन करना चहिये इति ॥ २१ ॥

तस्य मध्ये समासीनं भगवंतं रमापतिम् ।
चिंतयेत्सुस्थिरो भूत्वा तेजःपुंजकलेवरम् ॥२२॥

तदनंतर तिस सिंहासनके ऊपर विराजमान

तेजपुंजमय शरीर लक्ष्मीपति श्रीविष्णुभगवान्का स्थिरचित्त होकर चिंतन करना चहिये इति ॥२२॥

कोटिभानुप्रतीकाशं कोटिचन्द्रसुशीतलम् ।
नभोनीलशरीराभं मंदस्मितमुखांबुजम् ॥२३॥

सो विष्णु भगवान् कोटिसूर्यके समान प्रकाशवान् हैं और कोटिचंद्रमाके समान शीतल हैं और स्वच्छ निर्मल आकाशकी न्यांई जिनके शरीरकी नील प्रभा है तथा मंदमंद हसताहुया जिनका सुंदर मुखारविंद है इति ॥ २३ ॥

शिरःकिरीटशोभाढ्यं कर्णकुंडलमंडितम् ।
वनमालालसत्कंठं भुजबंधविभूषितम् ॥२४॥

तथा शिरके ऊपर रत्नोंका जडाहुया किरीट शोभायमान होरहाहै और कानोंमें मकराकृति कुंडल विराजमान हैं और कंठमें वनमाला धारण करे हुये हैं तथा भुजायोंमें बाजुबंद शोभा देरहे हैं इति ॥ २४ ॥

पीतांबरं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ।
करकंकणसद्भासं मणिमेखलयान्वितम् ॥२५॥

तथा दिव्य रेश्मी पीतांवर पहरेहुये हैं शंख चक्र गदा पद्म हाथोंमें धारण कियेहुये हैं और चारों हाथोंमें कंकण प्रकाशवान् होरहेहैं तथा कटिमें मणियोंकी सुंदर मेखला (तडागी) विराज रहीहै इति ॥ २५ ॥

कटिवंधनसंवीतं पादयोर्धृतनूपुरम् ।
सर्वांगसुंदरं नित्यं वामांगालिंगितश्रियम् २६

तथा कमरमें रेश्मी कटिवंधन लगाहुया है पैरोंमें नूपुर धारण कियेहुये हैं और सर्वप्रकारसें सर्व अंगोंसें सुंदर शोभायमान हैं तथा सर्वदा काल वामे अंगमें जिनके लक्ष्मीजी विराजमान होरहीहैं इति ॥ २६ ॥

शेषनागफणाछत्रं पार्षदैः कृतचामरम् ।
संमुखस्थितपक्षीन्द्रमप्सरोगीतसद्गुणम्॥२७॥

तथा शिरके ऊपर शेषनागके हजार फणोंका छत्र तना हुयाहै और सिंहासनके दोनों तरफ चार पार्षद चमर ढुला रहे हैं और संमुख गरुडजी हाथ ज़ोडे खडे हुयेहैं तथा सिंहासनके

आसपास दिव्य अप्सरायों भगवान्के विमल गुणोंको गायन कर रही हैं इति ॥ २७ ॥

समंतान्नारदाद्यैश्च नित्यं मुनिगणैः स्तुतम् ।
महेन्द्रादिसुरैश्चापि प्रार्थितं च नमस्कृतम्॥२८॥

तथा चारोंतरफ नित्यंप्रति नारद सनकादिक ऋषिमुनियोंके गण सम्यक् प्रकारसें स्तुति कररहेहैं तथा ब्रह्मा इन्द्र आदि देवता प्रार्थना और नमस्कार करते हैं ऐसा ध्यान करना चहिये इति ॥ २८ ॥

एवं संचिंत्य देवेशमापादतलमस्तकम् ।
पूजनं तस्य कुर्वीत मनसैव महीपते ॥ २९ ॥

हे महीपते राजन् ! इसप्रकार विष्णु भगवान्का सिरसे लेकर चरणपर्यंत मनमें ध्यान करके पीछे तिनका मनसेहि पूजन करना चहिये इति ॥ २९ ॥

गंधैर्नानाविधैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैश्च भोजनैः ।
नीराजनैश्च राजेन्द्र वस्त्रालंकरणैस्तथा ॥ ३० ॥

हे राजेन्द्र ! नानाप्रकारके पुष्पोंसें दिव्य सुगंधयुक्त धूपोंसें और नानाप्रकाके दीपोंसें और नानाप्रकारके सुंदर स्वादिष्ट दिव्यभोजनोंकरके और कर्पूरआदि आर्ति उतारनेसें तथा सुंदर सुंदर मनोहर वस्त्रोंसें और अलंकारभूषणोंसें भगवान्का पूजन करना चहिये इति ॥ ३० ॥

ततः श्रियश्च शेषस्य गरुडस्यापि पूजनम् ।
पार्षदानां च संक्षेपात्कुर्यात्प्रेम्णा समाहितः ॥

तिसके अनंतर बुद्धिमान् उपासक पुरुषको चहिये कि लक्ष्मीजीका और शेषनागका तथा गरुडजीका और पार्षदोंकाभी संक्षेपसें पूजन करे इति ॥ ३१ ॥

पूजनानंतरं देवं प्रार्थयेन्नम्रभावतः ।
नमस्कारं विधायाथ स्थापयेद्धृदयांबुजे ॥३२॥

इसप्रकारका मानसपूजन करके पीछे नम्रभावसें भगवान्की मनसेंहि स्तुति और प्रार्थना करे और फिर प्रदक्षिणा करके अपने हृदयकमलमें भगवान्की मनोहर मूर्तिको स्थापन करदेवे इति ॥ ३२ ॥

ततः पूर्वोक्तमंत्रस्य जपं कुर्याद्विधानतः ।
यथाशक्ति नराधीश चिंतयंश्चेतसा हरिम् ३३

हे नराधीश! तिसके पीछे पूर्वोक्त अष्टाक्षर वा द्वादशाक्षर मंत्रका विधिपूर्वक यथाशक्ति जप करे और जप करताहुया चित्तमें विष्णुभगवान्का चिंतन करताजावे जिससें मन दूसरी जगा न जावे इति ॥ ३३ ॥

जपांते च पठेन्नित्यं स्तोत्राणि विविधानि च ।
विष्णोर्नामसहस्रं च कीर्त्तयेत्सततं बुधः ३४

पीछे जपके अंतमें बुद्धिमान् पुरुष नानाप्रकारके विष्णु भगवान्के स्तोत्रोंका पाठ करे और विष्णुसहस्रनामकाभी निरंतर उच्चारण करतारहे इति ॥ ३४ ॥

इति ते कथितं राजन्नर्चनक्रममुत्तमम् ।
सगुणस्येश्वरस्येदं महापातकनाशनम् ॥ ३५ ॥

हे राजन्! यह मैंने तेरेको सगुण ईश्वरके स्वरूपका उत्तम पूजनप्रकार कथन किया है इसके करनेसें सर्व महापापोंका नाश होवेहै इति ॥ ३५ ॥

सर्वदोषहरं सद्यः सर्वेप्सितफलप्रदम् ।
कैवल्यदायकं भूप किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ३६

हे भूप! यह सगुण ईश्वरके स्वरूपका पूजन सर्वदोषोंके शीघ्र दूर करनेवाला है तथा सर्व मनोवांछित कामना पूर्ण करनेवाला और मोक्षपदके देनेवाला है अब तूं और क्या सुनना चाहताहै सो कहो इति ॥ ३६ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां सगुणेश्वराराधनप्रकारनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

भगवन्भवता प्रोक्तं श्रुत्वाऽर्चनविधिं हरेः ।
कृतार्थोऽहं न संदेहो विष्णोर्भक्तिर्हि मोक्षदा ॥

राजा बोले हे भगवन्! आपने जो विष्णुभगवान्के मासनपूजनकी विधि कथन करी तिसको श्रवण करके मैं कृतार्थ हुया हूं इसमें कुछ संशय नहिहै कि हरिकी भक्ति अवश्य मोक्षपदके देनेवाली है इति ॥ १ ॥

निर्गुणस्येश्वरस्याद्य स्वरूपं वद मे विभो ।
आराधनप्रकारं च कृपया विदुषां वर ॥ २ ॥

हे सर्वविद्वानोंमें श्रेष्ठ विभो! अब मेरे प्रति ईश्वरके निर्गुणस्वरूपकाभी निरूपण करो और उसके आराधनका प्रकारभी कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ २ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

ईश्वरस्य स्वरूपं तु विद्धि सर्वगतं नृप ।
अंतर्बहिश्च सर्वस्य ब्रह्मांडस्याततं सदा ॥३॥

हे नृप! निर्गुण ईश्वरका स्वरूप तूं सर्वव्यापक जान क्योंकि वो इस ब्रह्मांडके अंदर और वाहिर सर्व जगा पूर्ण होरहाहै इति ॥ ३ ॥

यतः सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
जायंते यत्र वर्त्तंते लीयंते च समंततः ॥ ४ ॥
आधारः सर्वविश्वस्य पालकश्च निरंतरम् ।
सर्वज्ञः सर्वशक्तिश्च तं विद्धि परमेश्वरम् ॥५॥

और जिससें यह चराचर भूतप्राणी उत्पन्न होतेहैं और जिसमें वर्त्तते विचरतेहैं तथा

जिसमें अंतमें सर्व तरफसें लीन होतेहैं और जो सर्व जगत्का आधारभूत और सर्वदाकाल सर्वजीवोंका पालना करनेहारा है तथा भूत भविष्यत् वर्तमानके सर्वपदार्थोंके जाननेहारा है तथा सर्वशक्तियोंकरके संयुक्त है तिसको तूं परमेश्वर जान इति ॥ ४ ॥ ५ ॥

येन सृष्टमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
अंतर्यामी च सर्वेषां जीवानां यो निरंतरम् ६
सर्वाणि च वशे यस्य भुवनानि महीपते ।
सर्वलोकाधिपो यश्च तं विद्धि परमेश्वरम् ॥७॥

तथा जिसनें इस चराचर जगत्को निर्माण किया है और जों सर्व जीवोंका सर्वदाकाल अंतर्यामी प्रेरक है तथा जिसके यह चौदों भुवन सर्वदाकाल वशमें रहते हैं और जो सर्व लोकोंका अधिपति मालिक है तिसको तूं परमेश्वर जान इति ॥ ६ ॥ ७ ॥

येनेयं विधृता भूमिः सूर्यो येन प्रकाशते ।
नभश्चित्रमयं येन जलपूर्णश्च सागरः ॥ ८ ॥

यद्भयाद्वाति वातोऽयमग्निस्तपति यद्भयात् ।
बिभेति च यमो यस्मात् तं विद्धि परमेश्वरम् ९

तथा जिसकी शक्तिसें यह पृथिवी धारण होरही है और जिसकरके यह सूर्य प्रकाश करता है और जिसकरके यह आकाश आश्चर्यमय प्रतीत होता है तथा जिसकरके समुद्र जलसें पूर्ण होरहा है तथा जिसके भयसें वायु मर्यादासें चलता है और जिसके भयसें अग्नि मर्यादासें तपता है तथा जिसके भयसें यमराजभी मर्यादासें जीवोंको मारता है तिसको तूं परमेश्वर जान इति ॥ ८ ॥ ९ ॥

सत्यं ज्ञानं तथाऽऽनंदः स्वरूपं परिकीर्तितम् ।
ईश्वरस्य महाराज वेदे वेद्यं त्वयाऽनिशम् १०

हे महाराज ! सत्य ज्ञान और आनंद यह निर्गुण ईश्वरका साक्षात् स्वरूप वेदमें कथन किया है सो तेरेको निरंतर जानना चहिये इति ॥ १० ॥

सत्यं सत्तास्वरूपत्वाज्ज्ञानं चैतन्यभावतः ।
आनंदं सुखहेतुत्वाद्विद्धि त्वं पृथिवीपते ॥११॥

हे पृथिवीपते ! सो ईश्वरका स्वरूप सत्तारूप होनेसें सत्य कहियेहै और चेतनरूप होनेसें ज्ञान कहियेहै तथा सुखस्वरूप होनेसें आनंद कहियेहै ऐसा तुझको जानना चहिये इति ॥ ११ ॥

तस्यैव सत्तयाऽस्तित्वं विद्यते सर्ववस्तुषु ।
चैतन्यांशेन तस्येदं चेष्टते निखिलं जगत् १२

सो उस ईश्वरकी सत्तासेंहि सर्वजगत्के पदार्थोंमें अस्तिपणा प्रतीत होताहै और ईश्वरके चेतनपनेके अंशसेंहि संपूर्ण जगत्में सर्वप्रकारकी क्रिया होरहीहै इति ॥ १२ ॥

सुखं सर्वाणि भूतानि तस्यैवानंदलेशतः ।
भुंजते सततं राजञ्जीवंति च तदाश्रयात् ॥१३॥

तथा हे राजन् ! उसी ईश्वरके आनंदके लेशसेंहि सर्वजगत्के भूतप्राणी सुखको भोगते हैं और उसीके आश्रयसें सब जीव जीते हैं इति ॥ १३ ॥

एवं ज्ञात्वा महीपाल सच्चिदानंदमीश्वरम् ।
आराधनं त्वया नित्यं कर्त्तव्यं तस्य संततम् १४

हे महीपाल! इसप्रकार ईश्वरको सत् चित आनंदस्वरूप जानकरके तिसका तेरेको सर्वदा-काल नित्यंप्रति आराधन करना चहिये इति १४

विधानं तत्र वक्ष्यामि समासेन निबोध मे ।
यथा पूर्वर्षयश्चक्रुर्मोक्षकामा नराधिप ॥ १५ ॥

हे नराधिप! अब मैं तेरोको संक्षेपसें तिस ईश्वरके आराधन करनेकी विधि कथन करताहूं जैसे कि मोक्षकी कामनावाले पहलेके ऋषिमुनि करते भये हैं इति ॥ १५ ॥

ओंकारो नामधेयं स्यादीश्वरस्य सनातनम् ।
तज्जपः परमेशस्य परमाराधनं मतम् ॥ १६ ॥

हे राजन्! ओंकार अर्थात् ओम् यह ईश्वरका सनातन कालसे नाम सर्वशास्त्रोंमें प्रसिद्ध है सो तिस ओंकारका जो जप करना है सोई ईश्वरका परमश्रेष्ठ आराधन ऋषिलोकोंने माना है इति ॥ १६ ॥

एकांते समुपाविश्य जपेदोंकारमव्ययम् ।
चिंतयेच्चेश्वरं नित्यं ज्योतीरूपं निरंतरम् ॥१७॥

बुद्धिमान् उपासक पुरुषको चहिये कि एकांतस्थानमें बैठकर निर्विकार ओंकार मंत्रका जप करे और जप करतेवकत अपने चित्तमें ईश्वरके ज्योतिःस्वरूपका चिंतनभी करता जावे इति ॥ १७ ॥

दिव्यांस्तस्य गुणांश्चापि मनसा परिभावयेत् ।
प्रार्थयेच्च नमस्कुर्यादेवं श्रद्धासमन्वितः ॥१८॥

तथा ईश्वरके जगत्रचनाआदि जो दिव्य गुण हैं तिनकाभी मनमें ध्यान करता जावे और इस वक्ष्यमाण रीतिसें श्रद्धाभक्ति और नम्रभावसें ईश्वरकी प्रार्थना करके नमस्कार करे इति ॥ १८ ॥

सो प्रार्थनाका प्रकार कथन करते हैं ।

सर्वज्ञः सर्वशक्तिस्त्वमंतर्याम्यक्षरः पुमान् ।
मायाधिपश्च सर्वेषां भूतानां परमः पिता १९

हे ईश्वर ! तूं सर्व भूत भविष्यत् और वर्तमानके

सर्व पदार्थोंके जाननेहारा है और सर्वशक्तियों-करके युक्त है और सर्वभूतप्राणियोंका अंदरसे प्रेरणा करनेहारा है तथा तूं अविनाशी पुरुष और मायाका अधिपति तथा सर्व जीवोंका परम पिता है इति ॥ १९ ॥

त्वत्तः सर्वमिदं जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
त्वय्येवांते लयं याति विश्वमेतच्चराचरम् ॥२०॥

तथा हे ईश्वर! तुमारेसेहि यह सर्व जगत् उत्पन्न होवे है और तुमारेमेंहि सर्व प्रतिष्ठित होरहाहै तथा अंतमें तुमारेमेंहि सर्व चराचर जगत् लीन होवेहै इति ॥ २० ॥

मम सर्वापराधांस्त्वं क्षमस्वाद्य दयानिधे ।
संसारार्णवमग्नोऽहं पाहि मां शरणागतम्॥२१॥

हे दयानिधे! तूं मेरे सर्व अपराधोंको क्षमा कर मैं संसाररूप समुद्रमें डूब रहाहूं सो तुमारी शरणमें आया हूं मेरी रक्षा करो इति ॥ २१ ॥

नमस्ते सर्वभूतेश नमस्ते विश्वपालक ।
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ भूयोभूयो नमोस्तु ते २२

हे सर्व भूतप्राणियोंके नियामक ईश्वर! मैं तेरेको नमस्कार करताहूं हे सर्वविश्वकी पालना करनेहारे! मैं तेरेप्रति नमस्कार करता हूं हे सर्व जगत्के नाथ मैं तेरेको नमस्कार करता हूं फिरभी वारंवार मेरी तेरेको नमस्कार होवो इति ॥

जपकाले महाराज प्रणवस्य समाहितः ।
तदर्थं चिंतयेचापि चेतसा नियतेन्द्रियः ॥२३॥

हे महाराज! ओंकारके जप करनेकालमें तिसके अर्थकाभी भलीप्रकारसें मनसें स्थिरचित्त होकर चिंतन करना चहिये इति ॥ २३ ॥

अब ओंकारके अर्थका निरूपण करतेहैं ।

अकारश्च तथोकारो मकारश्च तृतीयकः ।
अर्धमात्रा च रूपं स्यात्प्रणवस्य महीपते ॥२४॥

हे महीपते! अकार उकार और मकार तथा अर्धमात्रा (ध्वनि) यह मिलकर एक ओम् बनता है सो इसप्रकारसे ओंकारका रूप जानना चहिये इति ॥ २४ ॥

अकारो ब्रह्मणो रूपमुकारो विष्णुरुच्यते ।
मकारः शंकरः प्रोक्तो ध्वनिः स्यादीश्वरः स्वयम्

तिनमें अकार तो ब्रह्माका रूप है और उकार विष्णुका रूप है तथा मकार शिवका रूप है और ध्वनिरूप अर्धमात्रा स्वयं ईश्वरस्वरूप है इति ॥ २५ ॥

अकारो भूतलं प्रोक्तमुकारश्चांतरिक्षकम् ।
मकारः स्वर्गलोकश्च ध्वनिः स्यादीश्वरः स्वयम् ॥

तथा अकार पृथिवीलोक है और उकार अंतरिक्षलोक है तथा मकार स्वर्गलोक है और ध्वनिः साक्षात् ईश्वरका स्वरूप है इति ॥ २६ ॥

ऋग्वेदोऽकाररूपः स्यादुकारो यजुरुच्यते ।
मकारः सामवेदश्च ध्वनिः स्यादीश्वरः स्वयम् ॥

तथा अकार ऋग्वेदरूप है और उकार यजुर्वेदरूप है तथा मकार सामवेदरूप है और ध्वनिः साक्षात् ईश्वररूप है इति ॥ २७ ॥

इत्येवं भावयन्नर्थं सायंप्रातर्निरंतरम् ।
ओंकारोच्चारणं कुर्यादेकांते स्थिरमानसः २८

इसप्रकार मनसें ओंकारके अर्थका चिंतन करतेहुये स्थिरचित्त होकर ऐकातमें सर्वदाकाल सायं तथा प्रातःकाल ओंकारका उच्चारण करना चहिये इति ॥ २८ ॥

यथा संकीर्तिते नाम्नि नामिनः संनिधिर्भवेत् ।
ओंकारोच्चारणाद्राशु तथैवेशः प्रसीदति ॥२९॥

जैसे नामके उच्चारण करनेसें तिस नामवाले पुरुषकी समीपता होवे है तैसेहि ओंकारके उच्चारण करनेसें ईश्वरकी समीपता और प्रसन्नता होतीहै इति ॥ २९ ॥

ईश्वरस्य प्रसादेन विघ्ना नश्यंत्यशेषतः ।
सिद्ध्यंति सर्वकामाश्च शीघ्रमेव महीपते ॥३०॥

और हे महीपते! ईश्वरकी प्रसन्नता होनेसें उपासक पुरुषके सर्व विघ्नदोष दूर होजातेहैं और सर्व कामनायोंकी शीघ्रहि सिद्धि होतीहै इति ३०

निष्कामः प्राप्नुयाद्देवं भवबंधविवर्जितः ।
ईश्वरस्य परं धाम कैवल्यं भूप निश्चितम् ॥३१॥

हे भूप ! और जो उपासक पुरुष निष्काम होवे तो सो संसारके सर्व बंधनोंसें मुक्त हुया ईश्वरके परमधाम कैवल्यमोक्षको प्राप्त होवेहैं इति ॥ ३१ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां निर्गुणेश्वराराधनविधाननिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

जगतः कारणं प्रोक्तो भगवन्नीश्वरस्त्वया ।
पालको लयकर्त्ता च सर्वस्यास्य समंततः ॥१॥

राजा बोले हे भगवन् ! आपने कहा कि इस सर्व जगत्की उत्पत्ति और पालन तथा सर्व तरफसें नाश करनेहारा ईश्वर है इति ॥ १ ॥

कुतः स कुरुते विश्वं सर्वमेतच्चराचरम् ।
केन चापि प्रकारेण ज्ञातुमिच्छाम्यहं विभो ॥२॥

हे विभो ! सो ईश्वर कहांसें और किस साम-

श्रीसें इस चराचर जगत्को रचता है तथा किस रीतिसें रचता है सो मैं जानना चाहताहूं सो कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ २ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

शृणु राजन्वदाम्येतं सृष्टेः क्रममशेषतः ।
यथा ते संशयाः सर्वे नाशमेष्यंति निश्चितम् ३

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन् ! मैं अब तेरेको इस जगत्की रचनाका क्रम भलीप्रकारसे कथन करताहूं सो तूं श्रवण कर जिसके श्रवण करनेसे तेरे सृष्टिविषयके संपूर्ण संशय दूर होजावेंगे इति ॥३॥

ईश्वरः सत्यसंकल्पः सर्वशक्तिधरः प्रभुः ।
सर्वस्यास्य स विश्वस्य कर्त्ता धर्त्ता न संशयः ४

हे राजन् ! ईश्वर सत्यसंकल्प है अर्थात् सो जैसा संकल्प करता है उसी प्रकार तत्काल कार्य होजाता है और सो सर्व शक्तियोंके धारण करनेहारा है अर्थात् सर्व वार्तायोंमें समर्थ है सोई इस जगत्के निर्माण करनेवाला और धारण करनेहारा है इसमें संशय नहि है इति ॥ ४ ॥

स यथेच्छति यत्कार्यं यदा यादृशमेव च ।
तत्तथैव तदा शीघ्रं भूप संपद्यते ध्रुवम् ॥ ५ ॥

हे भूप ! सो ईश्वर जिस कालमें जिस प्रकारके और जैसे कार्यकी इच्छा करता है सो कार्य उसी प्रकारका उसी कालमें शीघ्रहि निश्चयकरके हो जाता है इति ॥ ५ ॥

नैव किंचिदपेक्षास्ति तस्यान्यस्य तु वस्तुनः ।
संकल्पादेव निर्माणं जगतः कुरुते प्रभुः ॥ ६ ॥

इसलिये तिसको जगत्की रचना करनेमें किसी और दूसरी वस्तुकी आवश्यकता नहि होती वो प्रभु केवल अपने संकल्पसेहि सर्व जगत्का निर्माण करताहै इति ॥ ६ ॥

ऊर्णनाभो यथा जंतुरनादायान्यवस्तुकम् ।
स्वयमेव तनोत्याशु तंतुजालं नराधिप ॥ ७ ॥
तथैवेशोऽप्यनादाय सामग्रीमन्यतो नृप ।
स्वयमेव स्वशक्त्येदं निर्मिमीतेऽखिलं जगत् ८

हे नराधिप ! जैसे मकडी दूसरी कोई वस्तुको नहि लेकर केवल अपने आपसेहि तंतुवोंका

जाला वना लेती है तैसेहि ईश्वरभी कोई दूसरी सामग्रीके विनाहि इस संपूर्ण जगत्को अपने आपहि अपनी शक्तिसें निर्माण करता है इति ॥ ७ ॥ ८ ॥

अव किसप्रकारसें जगत्की रचना होवेहै सो निरूपण करते हैं ।

ईशसंकल्पतो राजन्नाकाशः प्रथमं भवेत् ।
आकाशाज्जायते वायुर्वायोरग्निः प्रजायते ॥९॥

हे राजन् ! प्रथम ईश्वरके संकल्पसें आकाश उत्पन्न होवेहै और फिर आकाशसें वायु उत्पन्न होवेहै तथा वायुसें अग्नि उत्पन्न होवेहै इति ॥९॥

अग्नेर्जलं जलाद्भूमिर्जायते तदनंतरम् ।
तत्त्वान्येवं भवंत्यादौ पंचैतानि विशांपते॥१०॥

हे विशांपते राजन् ! और अग्निसें जल उत्पन्न होवेहै तथा तिसके अनंतर जलसें पृथिवी उत्पन्न होवेहै इसप्रकार पहले यह सूक्ष्म पांच तत्त्व उत्पन्न होतेहैं इति ॥ १० ॥

अब तिन तत्त्वोंसें पहले सूक्ष्मसृष्टिकी उत्पत्ति कथन करते हैं ।

आकाशाज्जायते श्रोत्रं शब्दस्तद्विषयस्तथा ।
वायोस्त्वगिन्द्रियं तस्य स्पर्शश्च विषयो भवेत् ॥

प्रथम आकाशसें श्रोत्र इन्द्रिय और तिसका विषय शब्द यह दोनों उत्पन्न होतेहैं और वायुसें त्वचा इन्द्रिय और तिसका विषय स्पर्श यह दोनों उत्पन्न होते हैं इति ॥ ११ ॥

अग्नेर्नेत्रं तथा तस्य विषयो रूपमेव च ।
जायते च जलाज्जिह्वा रसस्तद्विषयस्तथा ॥१२॥

तथा अग्निसें नेत्र इन्द्रिय और तिसका विषय रूप उत्पन्न होवेहै तथा जलसें जिह्वा इन्द्रिय और तिसका विषय रस उत्पन्न होवेहै इति ॥ १२ ॥

पृथिव्या घ्राणमप्यस्य गंधश्च विषयो भवेत् ।
पंच ज्ञानेन्द्रियाण्येवं जायंते विषयास्तथा ॥१३॥

तथा पृथिवीसे नासिका इन्द्रिय और तिसका विषय गंध उत्पन्न होवेहै इसप्रकार पांचमहा-

भूतोंसें सात्त्विक अंशसें पांच ज्ञानेन्द्रिय और तिनके विषय उत्पन्न होतेहैं इति ॥ १३ ॥

तद्वद्वाग्वचनं चैव भवेदाकाशतो नृप ।
पाणिस्तत्कर्म वायोश्च जायते तदनंतरम् ॥१४॥

हे नृप! तैसेहि वाचा इन्द्रिय और तिसका कार्य बोलना यह दोनों आकाशसें उत्पन्न होते हैं और तिसके अनंतर हस्त इन्द्रिय और तिसका कर्म ग्रहणत्याग वायुसें उत्पन्न होवेहैं इति ॥ १४ ॥

वन्हेः प्रजायते पादस्तत्कर्म गमनं तथा ।
जलात्पायुर्भवेत्कर्म विसर्गस्तस्य चानघ॥१५॥

तथा हे अनघ कहिये निष्पाप राजन्! पादइन्द्रिय और तिसका कर्म गमन यह दोनों अग्निसे उत्पन्न होतेहैं और गुदा इन्द्रिय और उसका मलत्याग कर्म यह दोनों जलसें उत्पन्न होतेहैं इति ॥१५॥

पृथिव्या जायते शिश्नस्तस्य कर्म च मैथुनम् ।
पंच कर्मेन्द्रियाण्येवं जायंते तत्क्रियास्तथा १६॥

तथा शिश्न इन्द्रिय और तिसका कर्म मैथुन

यह दोनों पृथिवीसें उत्पन्न होतेहैं इसप्रकार पांच-
महाभूतोंसें रजोगुणके अंशसे पांच कर्मइन्द्रियां
और तिनके कर्म उत्पन्न होतेहैं इति ॥ १६ ॥

मनस्तु सर्वतत्त्वानां सात्त्विकांशात्प्रजायते ।
राजसांशात्तथा प्राणो वृत्तिभेदात्स पंचधा १७

तथा मन सर्व पांचों तत्त्वोंसें सात्त्विकअंशसें
उत्पन्न होवेहै और प्राण पाचों तत्त्वोंके रजोगुण
अंशसें उत्पन्न होवेहै सो प्राण वृत्तिके भेदसे प्राण
अपान व्यान समान उदान इसप्रकारसें पांच
प्रकारका है इति ॥ १७ ॥

मन एव हि बुद्ध्यादिभेदेनोक्तं चतुर्विधम् ।
तच्चांतःकरणं त्वंतर्गतत्वादुच्यते बुधैः ॥ १८ ॥

सो मनहि मन बुद्धि चित्त अहंकार इस भेदसें
चार प्रकारका बुद्धिमान् ऋषिलोकोंने कथन
किया है तथा शरीरके अंदर रहनेसें सो अंतःक
रणभी कहलाताहै इति ॥ १८ ॥

ज्ञानेन्द्रियाणि पंचैवं पंच कर्मेन्द्रियाणि च ।
पंच प्राणा मनश्चैकं शरीरं सूक्ष्मसुच्यते ॥१९॥

इसप्रकार पांच ज्ञानइन्द्रिय और पांच कर्म-इन्द्रिय पांच प्राण और एक मन यह सोलां तत्त्व मिलकरके जीवका सूक्ष्म शरीर होताहै इति ॥१९॥

इसप्रकार सूक्ष्मतत्त्वोंसें सूक्ष्मसृष्टिकी उत्पत्ति कथन करके अव स्थूलसृष्टिकी उत्पत्ति कथन करतेहैं।

ततस्तु स्थूलसृष्ट्यर्थं तत्त्वानां परिमेलनम् ।
पंचीकरणतो भूप करोतीशः परस्परम् ॥ २० ॥

हे भूप! इसप्रकार सूक्ष्म सृष्टिकी रचनाके अनंतर स्थूलसृष्टिकी रचना करनेके लिये पंची-करणकी रीतिसें ईश्वर आकाशआदि पांचतत्त्वोंको परस्पर मिलाताहै इति ॥ २० ॥

अव पंचीकरणका प्रकार निरूपण करते हैं।

एकतत्त्वं द्विधा कृत्वा तस्यार्धं प्रविभज्य च ।
चतुर्धान्येषु तत्त्वेषु प्रत्येकं मेलयत्यजः ॥ २१ ॥

प्रथम एक तत्त्वके दो भाग करके और फिर तिन दोनोंमेंसें एकके चार भाग करके दूसरे तत्त्वोंमें एकएक मिलादिये इति ॥ २१ ॥

तथैव सर्वतत्त्वानां विभागान्मेलनात्पुनः ।
जायते सत्वरं भूप पंचीकरणमुत्तमम् ॥ २२ ॥

हे भूपत ! तैसेहि दुसरे तत्त्वोंके दोदो भाग करके और फिर तिनमेंसें एकएकके चारचार भाग करके दूसरे तत्त्वोंमें एकएक मिलाय देनेसें शीघ्रहि उत्तम पंचीकरण होजाताहै । सो एकएक तत्त्वके पांचपांच भाग होनेसें इस प्रक्रियाको पंचीकरण कहतेहै इति ॥ २२ ॥

ततस्तु तेभ्यस्तत्त्वेभ्यः सर्वमेतच्चराचरम् ।
भोग्यभोगालयोपेतं जगदुत्पद्यते क्रमात् २३

इसप्रकार पंचीकरण होनेके अनंतर तिन स्थूल पांच महाभूतोंसें फिर यह सर्व चराचर जगत् सर्व विषयभोग और सर्व स्थूलशरीरोंके सहित उत्पन्न होवेहै इति ॥ २३ ॥

अब स्थूलदेहमेंभी पांचभूतोंको दिखलाते हैं ।

आकाशादवकाशः स्याद्वायोर्वायुः शरीरगः ।
अग्नेस्तु जाठरो वह्निर्जलात्स्याद्रुधिरं तथा २४

पृथिव्याः स्युस्तथास्थीनि देहेऽस्मिन्नरपुंगव ।
पंचभूतमयं चैवं शरीरं स्थूलमुच्यते ॥ २५ ॥

हे नरपुंगव सर्व नरोंमें श्रेष्ठ राजन् ! इस देहमें जो कंठ नासिका और रोमछिद्रोंमें अवकाश है सो आकाशका भाग है और शरीरमें जो सर्व नाडियोंमें वायु रहता है सो वायुका भाग है और जो पेटमें जठराग्नि अन्नको पचाता है सो अग्निका भाग है और शरीरमें जो रुधिर है सो जलका भाग है तथा शरीरमें जो हड्डियां हैं सो सब पृथिवीका भाग है इसप्रकार यह स्थूलशरीरभी पांच महाभूतोंका बना हुया है इति ॥ २४ ॥ २५ ॥

तत्त्वानां जडरूपत्वात्क्रिया नैव भवेत्क्वचित् ।
अतः स्वांशेन जीवस्य निर्माणं कुरुते विभुः२६

परंतु तिन पांचतत्त्वोंको जडरूप होनेसें तिनसें स्वतंत्र कोई क्रिया ठीक नहि होसकती इसलिये फिर ईश्वर अपनी अंशसें चेतनरूप जीवको रचताहै इति ॥ २६ ॥

तेन युक्तानि तत्त्वानि तत्कार्याणि च सर्वतः ।
चेतनीभूय कुर्वंति क्रियाः सर्वा निरंतरम्॥२७॥

तिस जीवकरके युक्त भये पांचों तत्त्व और उनके कार्य शरीर आदि सर्व पदार्थ चेतनरूप हुये सर्व प्रकारकी क्रिया करतेहैं इति ॥ २७ ॥

राजोवाच ।

जीवस्य किं स्वरूपं स्यात्स्थूलं वा सूक्ष्ममेव वा ।
कथं चास्य समुत्पत्तिस्तत्त्वतो वद मे विभो २८

राजा बोले हे विभो! आपने कहा कि ईश्वर जीवको रचता है सो तिस जीवका क्या स्वरूप है क्या वो स्थूल है किंवा सूक्ष्म है और उसकी उत्पत्ति किसप्रकारसें होवे है सो कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ २८ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

अंतःकरणसंयुक्तं चैतन्यं परमात्मनः ।
जीव इत्युच्यते राजन् वेदवेदांगवेदिभिः २९

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन्! अंतःकरणके

साथ जो परमात्माका चैतन्य मिला हुयाहै उसको वेद और वेदके अंगोंके जाननेहारे ऋषिलोक जीव कहतेहैं अर्थात् मन और परमात्माकी चेतनशक्तिका अंश दोनों मिलकर जीव कहलाताहै इति ॥ २९ ॥

ईशसंकल्पतः पूर्वं स्यादंतःकरणोद्भवः ।
तेन सर्वगतं सद्यश्चैतन्यं युज्यते ततः ॥ ३० ॥

तिनमें पहले ईश्वरके संकल्पसें पूर्वोक्तरीतिसें पंचमहाभूतोंसें अंतःकरण उत्पन्न होवेहै और फिर उसके साथ सर्वव्यापक परमात्माकी चेतनताका संयोग होजावेहै सो जीव वनजाताहै इति ॥३०॥

यथा घटे समुत्पन्ने नभस्तेनाशु युज्यते ।
तद्वच्चैतन्यसंयोगः स्यान्मनसा नृपसत्तम ॥३१॥

हे सर्व राजोंमें श्रेष्ठ राजन्! जैसे घडेके वननेसें उसी कालमें उसके साथ व्यापक आकाशका संयोग होजावेहै तैसेहि मनके साथ चैतन्यका संयोग समझलेना चहिये इति ॥ ३१ ॥

यथा सूर्यप्रकाशो हि दर्पणे प्रतिविंवति ।
नान्यद्रव्येषु चैतन्यं मनसा युज्यते तथा ३२

यद्यपि सर्वव्यापक होनेसें ब्रह्मकी चेतनताका संयोग सव जड पदार्थोंमेंभी वराबर होवेहै तथापि जैसे सूर्यके प्रकाशका स्वच्छ दर्पणमेंहि प्रतिविंव होताहै दूसरे मलिन पदार्थोंमें नहि होता तैसेहि ब्रह्मकी चेतनताका संयोग सत्त्वगुणके कार्य स्वच्छ अंतःकरणमेंहि होवेहै दूसरे जड पदार्थोंमें नहि होवे है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३२ ॥

मनश्चैतन्ययोगेन चेतनं भवति द्रुतम् ।
वह्निसंयोगतो यद्वल्लोहं वह्निसमं भवेत् ॥३३॥

और चेतनताके संयोग होनेसें शीघ्रहि मनभी चेतनरूप होजाताहै जैसे कि अग्निके संयोगसें लोहा अग्निरूप होजाता है इति ॥ ३३ ॥

तद्द्वारा भूप देहेऽस्मिन्निन्द्रियेषु च सर्वतः ।
चैतन्यानुप्रवेशेन क्रिया समुपजायते ॥ ३४ ॥

हे भूप! फिर तिस चेतन भये मनके द्वारा इस

स्थूलदेह और इन्द्रियोंमें चेतनताका प्रवेश हो-नेसें सर्वप्रकारकी क्रिया होने लगजातीहै इति ३४

यथा राजाश्रितो मंत्री भृत्यान्प्रेरयतेऽभितः।
मनश्चैतन्यतस्तद्वदिन्द्रियाणि प्रवर्त्तयेत् ॥३५॥

सो जैसे राजाके आश्रयसें मंत्री सर्व तरफसें दूसरे सर्व भृत्योंको सर्व कार्योंमें प्रेरणा करता है तैसेहि मनभी चैतन्यके आश्रयसें सर्व इन्द्रियोंको अपने अपने विषयोंमें प्रवृत्त करता है इति ॥३५॥

इन्द्रियाणां प्रवृत्तौ तु देहश्चानुप्रवर्त्तते।
सर्वकार्येषु सर्वत्र यथेष्टं पृथिवीपते ॥ ३६ ॥

तथा हे पृथिवीपते! इन्द्रियोंके प्रवृत्त होनेसें फिर स्थूलदेहकीभी सब जगा सर्वकार्योंमें मनकी इच्छानुसार प्रवृत्ति होवेहै इति ॥ ३६ ॥

भृत्यानां मंत्रिणश्चापि राज्ञः कार्याय चेष्टनम्।
तद्वच्चैतन्यभोगाय चित्तेन्द्रियविचेष्टनम्॥३७॥

सो जैसे भृत्योंकी और मंत्रीकी सर्व चेष्टा राजाके कार्यके लिये होती है तैसेहि चेतन जीवा-

त्माके भोगकेलियेहि मन और इन्द्रियोंकी सर्व-
चेष्टा होवे है इति ॥ ३७ ॥

बालाग्रशतभागो यस्तद्भागस्य शतांशकः ।
जीवस्योक्तं तथा सूक्ष्मं स्वरूपं वेदवादिभिः ३८

जैसे सिरके एक वालके सौवें भागका फिर
सौवांभाग सूक्ष्म होवे है तैसेहि वेदके जानने-
हारे ऋषियोंने जीवका सूक्ष्म स्वरूप कथन किया
है इति ॥ ३८ ॥

यथा कोणगतो दीपो गृहं सर्वं प्रकाशयेत् ।
हृदयस्थस्तथा जीवो देहं सर्वं प्रकाशयेत् ३९

तथा जैसे घरके एक कोणेमें रखा हुया
दीपक संपूर्ण घरको प्रकाश करता है तैसेहि
हृदयकमलमें स्थित हुया जीव संपूर्ण देहको
प्रकाश करता है उसकी चेतनता सारे शरीरमें
व्यापक होजातीहै इति ॥ ३९ ॥

यथा दीपप्रभा राजन् क्षुद्रे महति वा गृहे ।
संकोचं च विकाशं च समायाति तदाश्रयात् ॥

तथा हे राजन्! जैसे छोटे वा वडे घरमें उसके आश्रयसें दीपककी प्रभाका संकोच और विकाश होवे है अर्थात् छोटे घरमें दीपकका प्रकाश छोटा होजाताहै और वडे घरमें वडा होजाताहै इति ॥ ४० ॥

जीवोऽप्येवं शरीरेषु क्षुद्रेषु च महत्सु च ।
संकोचं च विकाशं च प्रयाति कर्मयोगतः ४१

तैसेहि जीवात्माके प्रकाशकाभी कर्मोंके वशसें छोटे वा वडे शरीरोंमें संकोच और विकाश होवे है अर्थात् कीडी आदि छोटे शरीरमें संकोच होवे है और हाथी आदि वडे शरीरमें विकाश होवे है इति ॥ ४१ ॥

यथाकाशो घटांतःस्थो दीपारूढश्च पावकः ।
व्रजत्येवं मनोयुक्तो जीवोऽन्यत्र स्वकर्मभिः ४२

तथा जैसे घडेके अंदर स्थित हुया आकाश घडेके साथ जाता है और जैसे दीपककी वत्ती-पर चढा हुया अग्नि दीपकके साथ जाता है तैसेहि शुभाशुभ कर्मोंके वशसे जीवात्माभी

दूसरी जगा लोकपरलोकमें जाता है ऐसा समझना चहिये इति ॥ ४२ ॥

कर्मजैर्वंधनैर्वद्धो नानायोनिषु संततम् ।
जीवो भ्रमति संसारे यावन्मोक्षं न विंदति ४३

हे राजन्! इसप्रकार यह जीव कर्मोंके वंधनोंसें वंधा हुया अनेक प्रकारकी नीच वा ऊंच योनियोंमें संसारमें सर्वदाकाल तवतक भ्रमता रहताहै जबतक कि कैवल्य मोक्षको प्राप्त नहि होता इति ॥ ४३ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां जगदुत्पत्तिक्रमनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

कर्मणां किं स्वरूपं स्यात्तेषां भेदाश्च के मताः ।
कथं तैर्बध्यते जीवो ब्रूहि मे करुणाकर ॥ १ ॥

राजा वोले हे करुणाकर भगवन्! आपने

कहा कि कर्मोंसे जीव बंधायमान हुया संसारमें भ्रमता है सो तिन कर्मोंका क्या स्वरूप है और तिनके कितने प्रकारके भेद हैं तथा उनसें जीव किसरीतिसें बंधायमान होता है सो आप कृपाकरके मेरेको कथन करो इति ॥ १ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

ईश्वरो विश्वसृष्ट्यर्थं ज्ञानशक्तिसमन्वितः ।
क्रियाशक्तिं समादाय करोतीदं चराचरम् ॥२॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन्! जगत्की रचना करनेकेलिये ज्ञानशक्तियुक्त जो ईश्वर है सो क्रियाशक्तिको ग्रहण करके इस चराचर जगत्को रचताहै इति ॥ २ ॥

ततः सर्वेषु जीवेषु क्रियाशक्तिप्रभावतः ।
सततं सर्वकर्माणि प्रवर्त्तंते नराधिप ॥ ३ ॥

हे नराधिप! उस ईश्वरकी क्रियाशक्तिके प्रभावसें सर्व जीवोंमें क्रिया प्रचलित होवेहै और फिर सर्वदाकाल सर्व जगत्के सर्व कर्म प्रचलित होते हैं इति ॥ ३ ॥

शरीरेणेन्द्रियैश्चापि मनसा या क्रिया भवेत् ।
साधारणतया राजन् सा कर्मेत्यभिधीयते ॥४॥

हे राजन्! शरीर और इन्द्रिय तथा मन-करके जो साधारण रूपसें नित्यंप्रति क्रिया होवे है उसको कर्म कहते हैं इति ॥ ४ ॥

कर्मेति च विकर्मेति सुकर्मेति त्रिधा गतिः ।
कर्मणां विहिता राजन् शृणु तल्लक्षणं पृथक् ५

हे राजन्! कर्म विकर्म और सुकर्म इस प्रकारसें कर्मोंकी तीन प्रकारकी गति होती है सो तिन तीनों प्रकारके कर्मोंका भिन्नभिन्न लक्षण मैं तेरेको कहता हूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ ५ ॥

शरीररक्षणार्थं या स्नानाशनमुखा क्रिया ।
क्रियते जंतुभिर्नित्यं कर्म तत्केवलं भवेत् ॥६॥

शरीरकी रक्षाके लिये जो स्नान भोजन शयन आदि साधारण क्रिया कीजाती है सो केवल कर्म कहलाता है इति ॥ ६ ॥

यया स्यादन्यजीवानामहितं क्रियया नृप ।
तद्विकर्मेति संप्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ७

तथा हे नृप! जिस क्रियाके करनेसें दूसरे जीवोंकी हानि वा दुःख होवे तिस क्रियाको तत्त्वदर्शी मुनिलोक विकर्म कहते हैं अर्थात् वो बुरा कर्म कहिये है इति ॥ ७ ॥

यत्रात्मनः परेषां च राजन्स्यात्सततं हितम् ।
तत्सुकर्मेति विज्ञेयं निगमागमसंमतम् ॥ ८ ॥

तथा हे राजन्! जिस क्रियामें अपने आत्माका वा दूसरे जीवोंका सर्वदाकाल हित होवे सो क्रिया वेदशास्त्रोंके मतके अनुसार सुकर्म कहिये है अर्थात् सो श्रेष्ठ कर्म कहलाता है इति ॥ ८ ॥

सुकर्मणा भवेत्पुण्यं पातकं च विकर्मणा ।
कर्मणा केवलेन स्यान्न पुण्यं नच पातकम्॥९॥

तिनमें सुकर्मसें तो पुण्यकी प्राप्ति होती है और विकर्मसें पापकी प्राप्ति होती है और केवल कर्मसें न पुण्य होता है न पाप होता है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ९ ॥

सुकर्मणोर्ध्वमायाति यात्यधश्च विकर्मणा ।
मिश्रितत्वे तयोर्जीवो मध्ये तिष्ठति भूपते॥१०॥

तथा हे भूपते! सुकर्मसें यह जीव ऊपर स्वर्गआदि लोकोंमें उत्तम गतिको पाता है और विकर्मसे नीचेके लोकोंमें अधोगतिको पाता है तथा पुण्य पाप दोनोंके मिश्रित होनेसें सर्वदाकाल मध्यलोकमें रहता है अर्थात् इस मर्त्यलोकमें रहता है इति ॥ १० ॥

सुकर्मणा भवेत्सौख्यं दुःखभोगी विकर्मणा ।
द्वयोः संयोगतो लोके द्विविधं फलमश्नुते॥११॥

तथा हे महीपते! सुकर्मसें यह जीव सुखको प्राप्त होवे है और विकर्मसें दुःखको प्राप्त होवे है तथा पुण्य पाप दोनोंके मिलनेसें इस लोकमें दोनोंप्रकारके फलको प्राप्त होवे है इति ॥ ११ ॥

यथा दंडहतो भूप कंदुकः परिधावति ।
तथैव प्रेरितो जीवः कर्मणोर्ध्वमधो व्रजेत्॥१२॥

हे भूप! जैसे दंडके लगनेसें गेंद परवश हुया सब तरफ दौडता है तैसेहि कर्मोंकरके प्रेरित हुया जीव कबी ऊपर स्वर्ग आदि लोकोंमें जाता है और कबी नीचे पाताल आदि लोकोंमें जाता है इति ॥ १२ ॥

देहेऽहंभावमाश्रित्य यत्करोति शुभाशुभम् ।
नैवायं बद्ध्यते जीवः कर्मणा नात्र संशयः १३

और अज्ञानके कारणसें स्थूल सूक्ष्म देहमें अभिमान वा अहंभावकरके यह जीव जो कुछ शुभ वा अशुभ कर्म करता है तो उससे बंधायमान होता है इसमें संशय नहि है इति ॥ १३ ॥

देहादितः पृथङ्नित्यमसंगं चित्स्वरूपकम् ।
यदाऽऽत्मानं विजानाति कर्मभिर्न विलिप्यते ॥

और जब विवेकज्ञानसें यह जीव अपने आत्माको स्थूल सूक्ष्म देहसें भिन्न असंग चेतनस्वरूप जान लेताहै! तो फिर शुभाशुभ कर्मोंसें लिपायमान नहि होवे है इति ॥ १४ ॥

राजोवाच ।

एकेन कर्मणैकं स्याज्जन्म वानेककर्मभिः ।
किंवैकेन भवंत्यत्र बहुजन्मानि कर्मणा ॥१५॥

अवश्यमेव सर्वाणि भुज्यंते जंतुभिर्मुने ।
कर्माणि वा विनश्यंति कानिचित्त्वंतरालके १६

राजा बोले हे भगवन्! क्या एक कर्मसे एक जन्म होता है किंवा अनेक कर्मोंसें एक जन्म होता है अथवा एक कर्मसें अनेक जन्म होते हैं। तथा क्या अपने किये सवी कर्म जीवोंको भोगने पडते हैं किंवा कोई कर्म बीचमेंहि विनाभोगे नाशभी होजाते हैं इस वार्ताका निर्णय कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ १५ ॥ १६ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

गहनोऽयं महाराज प्रश्नस्ते कर्मणां प्रति ।
श्रूयतां निर्णयस्तत्र सावधानेन चेतसा ॥१७॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन्! कर्मोंकी बाबत यह तुमारा प्रश्न वडा गहन है सो तहां मैं तेरेको निर्णय कथन करताहूं सावधानचित्त होकर तूं श्रवण कर इति ॥ १७ ॥

प्रारब्धं संचितं चापि क्रियमाणं तथैव च ।
त्रिविधं सर्वजंतूनां कर्म स्यात्पृथिवीपते ॥१८॥

हे पृथिवीपते! प्रारब्ध संचित और क्रियमाण

इस भेदसें सर्व जीवोंके तीन प्रकारके कर्म होते हैं इति ॥ १८ ॥

जन्मप्रारंभकं कर्म प्रारब्धं समुदीरितम् ।
तदनेकविधत्वात्स्याज्जन्मनां कारणं पृथक् १९

तिनमें जिन कर्मोंसें वर्तमान शरीरका जन्म और भोग होवे है सो प्रारब्धकर्म कहिये है सो प्रारब्धकर्म अनेक प्रकारका होनेसें भिन्नभिन्न प्रकारसें जन्मोंका कारण होताहै इति ॥ १९ ॥

अब तिस भिन्नभिन्न प्रकारको दिखलाते हैं-

एकजन्मार्जितान्येकं कदाचिज्जन्म कुर्वते ।
साधारणानि कर्माणि प्रारब्धानि महीपते २०

हे महीपते ! कवी तो एक जन्ममें किये हुये साधारण प्रारब्धकर्म मिलकरके एकहि जन्म उत्पन्न करते हैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ २० ॥

कदाचिदेकमेवोग्रं कर्माऽनेकजनिप्रदम् ।
यथा तपो महच्चीर्णं ब्रह्महत्याशतानि वा ॥२१॥

तथा कवी एकहि वडाभारी पुण्य वा पाप कर्म अनेक जन्मोंका कारण होजाताहै जैसे कि-

वडाभारी किया तप अथवा सेकडों करीहुई ब्रह्म-हत्या इन दोनोंका फल एक जन्ममें भोगना अ-संभव होनेसें वहुत जन्मोंका कारण होवे है इति ॥ २१ ॥

बहुजन्मार्जितान्येवं निर्बलानि प्रकुर्वते ।
कचित्कर्माणि जन्मैकं मिलितानि महीपते २२

तथा हे महीपते ! कवी वहुत जन्मोंमें संचय कियेहुये अनेक निर्वल कर्म मिलकरके एकहि जन्म करते हैं क्योंकि निर्वल होनेसें वहुतोंके मिलनेसें हि एक जन्म होंसकताहै इति ॥ २२ ॥

साधारणतया भूप भुज्यंते सर्वदेहिभिः ।
सर्वकर्माणि नाभुक्तं क्षीयते कर्म वै कचित् २३

तथा हे भूप ! साधारणरीतिसें तो अपने कि-येहुये सवी कर्म सव जीवोंको भोगने पडतेहैं कोई कर्मभी भोगेविना कवी क्षीण नहि होता है इति ॥ २३ ॥

विशेषयत्नतस्तेषां कचिन्नाशोऽपि जायते ।
योगेन तपसोग्रेण ब्रह्मज्ञानेन वा यथा ॥ २४ ॥

परंतु विशेष उग्र यत्न करनेसें तिनका कहीं नाशभी होजाता है जैसे कि योगसमाधिसें वा उग्रतपसें वा ब्रह्मज्ञानके प्रभावसें सर्व पापोंका नाश होजावे है इति ॥ २४ ॥

देवतानां प्रसादाच्च पापं कर्म विनश्यति ।
यथा नंदीश्वरः शंभोर्वराद्देवत्वमागतः ॥ २५ ॥

तथा देवतायोंकी प्रसन्नता वा वरदानसेंभी पापकर्मोंका नाश होजावे है जैसे कि नंदीश्वरगण पहले साधारण मनुष्य था और फिर उग्रतपसें महादेवके वरसें तत्काल देवतारूप होजाता भया यह वार्ता पातंजलभाष्यमें लिखी है इति ॥ २५ ॥

महता पातकेनापि पुण्यं कर्म विनश्यति ।
नहुषः सर्पतां प्राप्तो मुनीनां शापतो यथा २६

तैसेहि कहीं वडे भारी पापकर्म करनेसे पुण्यकर्मकाभी नाश होजाता है जैसे कि महर्षियोंके शापसें नहुष राजा सर्परूप होकर स्वर्गसें नीचे पृथिवीपर गिरपडा था यह वार्ता महाभारतमें लिखीहै इति ॥ २६ ॥

कच्चित्पुण्येन राजेन्द्र पापं भवति कर्मणा ।
मृगपोषणतो यातो मृगत्वं भरतो यथा ॥२७॥

तथा हे राजेन्द्र ! किसी जगा पुण्यकर्म करनेसें उलटा पापकी उत्पत्ति होती है जैसे कि जडभरत मृगके बच्चेके पोषण करनेसें आपभी मृग जन्मको प्राप्त होताभया है यह वार्ता भागवतमें लिखी है इति ॥ २७ ॥

तथैव पातकेनापि कच्चित्पुण्यं प्रजायते ।
यथा हिंस्रपशुं हत्वा व्याधः स्वर्गमुपागतः २८

तथा किसीजगा पाप करनेसेंभी पुण्यकी प्राप्ति होती है जैसे कि दुष्ट हिंसक पशुकी हत्या करनेसें एक व्याध तत्काल स्वर्गको जाता भया यह वार्ता महाभारतमें लिखी है इति ॥ २८ ॥

या माता सा भवेद्भार्या या भार्या जननी पुनः।
कर्मयोगेन राजेन्द्र गहना कर्मणो गतिः ॥२९॥

किंच हे राजेन्द्र ! जो पिछले जन्ममें माता होती है वो फिर दूसरे जन्ममें कर्मयोगसें स्त्री होजाती है और जो स्त्री होती है सो फिर माता

होज़ातीहैं इसलिये कर्मोंकी गति वडी गहन है इति ॥ २९ ॥

यः पिता स भवेत्पुत्रो यः पुत्रः स पुनः पिता।
कर्मयोगेन राजेन्द्र गहना कर्मणो गतिः ॥३०॥

तथा हे राजेन्द्र! जो पिछले जन्ममें पिता होता है सो फिर दूसरे जन्ममें कर्मयोगसें पुत्र होजाताहै और जो पुत्र होता है वो फिर पिता होजाता है इसलिये कर्मोंकी गति वडी गहन है इति ॥ ३० ॥

नीचाः समुन्नतिं यान्ति नीचत्वं च समुन्नताः।
कर्मयोगेन राजेन्द्र गहना कर्मणो गतिः ॥३१॥

तथा हे राजेन्द्र! जो पुरुष एककालमें नीच होतेहैं वो फिर दूसरे कालसें कर्मयोगसें वडे ऊंचे होजातेहैं और जो एककालमें वडे ऊंचे होते हैं वो फिर वडे नीच होजातेहैं इसलिये कर्मोंकी गति वडी गहन है इति ॥ ३१ ॥

वृद्धा गृहेषु तिष्ठंति म्रियंते यौवनान्विताः।
कर्मयोगेन राजेन्द्र गहना कर्मणो गतिः ॥३२॥

तथा हे राजेन्द्र ! कहीं वृद्ध पुरुष तो घरसें वैठे रहते हैं और कर्मयोगसें जुवान पुरुष वा वालक मरजाते हैं इसलिये कर्मोंकी गति वडी गहन है इति ॥ ३२ ॥

जीवो वाञ्छति यत्कर्तुं विपरीतं भवेत्ततः ।
कर्मयोगेन राजेन्द्र गहना कर्मणो गतिः ॥३३॥

तथा हे राजेन्द्र ! जीव जो काम करना चाहता है वा जिस वस्तुकी इच्छा करता है तो कर्मयोगसे वो उसके उलटा होजाता है इसलिये कर्मोंकी गति वडी गहन है इति ॥ ३३ ॥

एवं कर्मगतिं चित्रां विदित्वा पृथिवीपते ।
हर्षशोकविनिर्मुक्तः कुरु कार्यं यथागतम् ३४

हे पृथिवीपते ! इसप्रकार कर्मगतिको वडी विलक्षण जानकरके हर्षशोकसें रहित भया तूं समय अनुसार प्राप्त भये कर्मोंको असंग होकरके कर इति ॥ ३४ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां कर्मप्रकारनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

कर्माधीनं भवेल्लोके जननं मरणं तथा ।
जंतूनामिह योगीन्द्र जानाम्यत्र न संशयः १
तथापि मरणाद्भीतिर्बाधते मां निरंतरम् ।
बंधूनां च वियोगेन दुःखं भवति दुस्तरम् ॥२॥

राजा बोले हे योगीन्द्र सर्वयोगियोंमें श्रेष्ठ भगवन् ! सर्व जीवोंका कर्मोंके अधीनहि इस जगत्में जीवना वा मरणा होता है यह मैं अछी तरेसे जानता हूं इसमें कुछ संशय नहि है तोभी मेरेको अपने मरणेका डर निरंतर दुःख देताहै अर्थात् मरणेका वडा भारी भय लगता है । तथा अपने कुटुंबियोंके मरणेसें उनके वियोगसेंभी मेरेको वडा भारी दुःख वा शोक होता है इति ॥ १ ॥ २ ॥

यथा मृत्युभयं न स्याच्छोकश्चापि वियोगजः ।
तथैव शरणायातं शाधि मां करुणानिधे ॥३॥

सो हे करुणानिधे ! जैसे मेरा यह मृत्युका

भय दूर होजावे और कुटुंबियोंके वियोगसें शोकभी नहि होवे तैसेहि आपकी शरणमें प्राप्त भये मुझको आप उपदेश करो इति ॥ ३ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

ईश्वरेण जगत्सृष्टं राजन्नेतच्चराचरम् ।
नानावस्तुविलासाढ्यं जीवानां भोगहेतवे ॥४॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन्! ईश्वरने यह नानाप्रकारकी खानपान आदि वस्तुवोंकरके युक्त और अनेक प्रकारके विलासोंकरके सहित इस चराचर जगत्को केवल जीवोंके भोगकेलिये रचा है इति ॥ ४ ॥

यदि नैव भवेल्लोके मृत्युः कस्यापि देहिनः ।
तदेदं सर्वतो विश्वं पूरितं जंतुभिर्भवेत् ॥ ५ ॥

जो इसलोकमें किसी जीवकी मृत्यु नहि होवे तो फिर यह संपूर्ण जगत् जीवोंहि जीवोंसें सर्व तरफसें भर जावे इति ॥ ५ ॥

पूर्वेषां मरणाभावादन्येषां जन्मधारिणाम् ।
नावकाशो भवेत्क्वापि स्थातुं भोक्तुं च भूपते ६

और हे भूपते! पहलेके जीव जो नहि मरें तो फिर दूसरे जीव जो जन्म धारण करते हैं तो उनको रहनेका वा भोग भोगनेका अवकाश कहांसें मिले इति ॥ ६ ॥

तस्मादशेषजीवानामवकाशाय निर्मितः ।
ईश्वरेण महाराज मृत्युः संहारकारकः ॥ ७ ॥

इसलिये हे महाराज! सर्व जीवोंको क्रमसें भोग भोगनेके अवकाश देनेके लिये ईश्वरने जीवोंके संहार करनेहारे मृत्युको निर्माण किया है ऐसा समझना चहिये इति ॥ ७ ॥

जातस्य निश्चितं मृत्युर्भवत्यत्र महीपते ।
राजन्कश्चिदिहामुत्र नास्ति मृत्योरगोचरः ॥८॥

हे राजन्! इस जगत्में जो जन्मता है उसकी अवश्य मृत्यु होतीहै इसमें संशय नहि है इस-लिये इस लोकमें तथा परलोकमें कोई जीवभी मृत्युका अगोचर नहि है अर्थात् सब जीव मृत्युके वशमें होते हैं इति ॥ ८ ॥

मनुष्याः स्वल्पकालेन म्रियंते देवताः पुनः ।
चिरकालेन राजेन्द्र नास्ति मृत्योरगोचरः ॥९॥

हे राजेन्द्र ! तिनमें मनुष्य तो थोडे कालमें मरजाते हैं और देवता चिरकालमें मरतेहैं परंतु मरते दोनोंहि हैं इसलिये कोई जीवभी मृत्युके अगोचर नहि है इति ॥ ९ ॥

ब्रह्मा महर्षयश्चैव शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः ।
म्रियंते कालतः सर्वे नास्ति मृत्योरगोचरः १०

तथा ब्रह्मा सप्तमहर्षि और इन्द्र आदि स्वर्गमें रहनेहारे सर्व देवता काल पायकरके सबी मरजातेहैं इसलिये कोई जीवभी मृत्युके अगोचर नहि है इति ॥ १० ॥

योगिनो ज्ञानिनश्चापि सिद्धाः शूराश्च भूतले ।
कालेन विलयं यांति नास्ति मृत्योरगोचरः ११

तथा बडेबडे योगीश्वर और पंडित ज्ञानी लोक तथा सिद्ध वा बडेबडे शूरबीर लोक इस भूतलमें सबी काल पायकरके मरजाते हैं इसलिये कोईभी जीव मृत्युका अगोचर नहि है इति ११

असंख्याता महीपालाः ससैन्यधनवाहनाः ।
कालेन भक्षिताः सर्वे नास्ति मृत्योरगोचरः१२

तथा हे राजन्! असंख्य बडेबडे राजालोक बडीबडी सेना और धनके खजाने तथा हाथी घोडे आदि वाहनोंके सहित सब कालने भक्षण करलिये हैं इसलिये कोई जीवभी मृत्युका अगोचर नहि है इति ॥ १२ ॥

सूर्यश्चन्द्रश्च ताराणां मंडलं गिरयोऽर्णवाः ।
कालेन नाशमायांति नास्ति मृत्योरगोचरः१३॥

तथा सूर्य चंद्रमा और तारायोंके मंडल और बडेबडे पर्वत तथा सप्तसमुद्र सबी काल पायकरके नाशको प्राप्त होजाते हैं इसलिये कोई जीवभी मृत्युका अगोचर नहि है इति ॥ १३ ॥

जले स्थले च शैले च पाताले चांबरे तथा ।
सर्वत्र बाधते मृत्युर्नास्ति मृत्योरगोचरः॥१४॥

किंच जलमें स्थलमें और पातालमें तथा आकाशमें सब जगा मृत्यु जीवोंको मारता है इसलिये कोई जीवभी मृत्युका अगोचर

नहि है अर्थात् सवी जीव मृत्युके वशमें हैं इति ॥ १४ ॥

अवश्यं भवितव्येऽर्थे शोकः स्यान्निष्फलो यतः।
तस्मात्तत्र महीपाल न त्वं शोचितुमर्हसि॥१५॥

हे महीपाल! जो वार्ता अवश्य होनेवाली होवे उसमें किसी प्रकारका शोक करना व्यर्थ होता है इसलिये तेरेको वंधुवोंके वियोगमें शोच करना उचित नहि है इति ॥ १५ ॥

क गताः पितरः पूर्वे तेभ्यः पूर्वतराश्च ये।
तव तस्मान्महीपाल न त्वं शोचितुमर्हसि१६॥

हे महीपाल! तुमारे पहलेके पिता पितामह आदि वडेरे लोक कहां चलेगये और उनसेंभी जो पहलेके वडेरे थे वोभी कहां चलेगये इसलिये इस वातको विचार कर तेरेको शोच करना उचित नहि है इति ॥ १६ ॥

कालस्य चर्वणं सर्वं ससुरासुरमानवम्।
जगदेतन्महीपाल न त्वं शोचितुमर्हसि॥१७॥

तथा हे महीपाल! यह संपूर्ण देवता दैत्य मनुष्य आदि जीवोंकरके युक्त सवी संसार कालका चवीना है इसलियेभी तेरेको किसी जीव-केलिये शोच करना उचित नहि है इति ॥१७॥

आत्मा नित्योऽविनाशी च देहश्च क्षणभंगुरः ।
इति ज्ञात्वा महीपाल न त्वं शोचितुमर्हसि १८

तथा हे महीपाल! जीवात्मा सर्वदाकाल नित्य और अविनाशी है अर्थात् नाशसें रहित है और सर्व जीवोंका देह नाशवान् क्षणभंगुर है सो इस-प्रकार विचार करके तेरेको किसीप्रकारका शोच करना योग्य नहि है इति ॥ १८ ॥

सर्वदेहेषु चैतन्यं भोक्तृरूपेण तिष्ठति ।
एकस्मिन्विगते देहे न त्वं शोचितुमर्हसि॥१९॥

किंच सर्व जगत्के जीवोंके देहोंमें चेतन आत्मा भोक्तारूपसें विराजमान हो रहा है तो उनमेंसें किसी एक देहके नाश होनेमें क्या शोक करना चहिये अर्थात् कुछ नहि करना चहिये जैसे किसी राजाके हजारों लाखों ग्राम होवें और उनमेंसें

कवी एक ग्राम नष्ट होजावे तो वो शोच नहि करता है तैसेहि तेरेकोभी अपने आत्माको सर्व देहोंमें व्यापक समझकर शोच नहि करना चहिये इति ॥ १९ ॥

चलः सूर्यश्चलश्चन्द्रश्चलास्ताराश्चला मही ।
चलं सर्वं जगत्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि॥२०॥

तथा हे राजन्! सूर्यभी चलायमान है और चंद्रमाभी चलायमान है और तारागणभी सबी चलायमान हैं तथा पृथिवीभी चलायमान है किंच संपूर्ण जगत्हि चलायमान है इसलिये तेरेको किसी बातकेलिये शोच करना उचित नहि है इति ॥ २० ॥

यावत्कर्मफलं येन भोक्तव्यं पृथिवीतले ।
तावदेव जनः स्थातुं शक्नोत्यत्र महीपते॥२१॥

किंच हे महीपते! जबतक जिस जीवने पृथिवीतलमें जितना अपना कर्मफल भोगना होता है उतना कालहि सो जीव यहांपर ठहर सकताहै इति ॥ २१ ॥

ततो यत्नसहस्रैस्तु कर्मभोगादनंतरम् ।
क्षणमेकं न जीवोऽत्र राजंस्तिष्ठति कर्हिचित् ॥

हे राजन्! तिस कर्मफल भोगनेके पीछे हजारों यत्न करनेसेंभी एक क्षणमात्रभी कोई जीव पृथिवीपर कवी नहि ठहर सकताहै अर्थात् शरीर छोडकर चलाजाताहै इसलिये उसमें शोच करना व्यर्थ है इति ॥ २२ ॥

अकस्माद्बंधुरायाति तथाऽकस्माच्च गच्छति ।
तत्र शोकश्च मोहश्च कः कर्त्तव्यो नराधिप २३

किंच हे नराधिप! अकस्मात् दैवयोगसें अचानक कुटुंबीलोक आयजाते हैं अर्थात् जन्मजाते हैं और फिर अचानकहि चलेजाते हैं अर्थात् मरजाते हैं इसलिये क्या शोच करना चहिये अर्थात् कुछ नहि करना चहिये इति ॥ २३ ॥

पांथानामिव संयोगं विद्धि बंधुसमागमम् ।
संयुज्यंते वियुज्यंते संसाराध्वनि कर्मभिः २४

हे राजन्! इस कुटुंबियोंके समागमको तूं मुसाफिरोंके समागम तुल्य जान सो जैसे मुसाफिर

मार्गमें एकत्र एकठे होजातेहैं और फिर विछुडजा-तेहैं तैसेहि संसाररूप मार्गमें अपने अपने कर्मोंके अधीन कुटुंबी लोक एकठे होजाते हैं और फिर विछुडजाते हैं इति ॥ २४ ॥

न कश्चित्कस्यचित्संगी जीवः संसारसागरे ।
एको याति तथाऽऽयाति ततः शोको निरर्थकः

किंच हे राजन्! इस संसारसागरमें कोई जीव किसी जीवका साथी सहायक नहि है यह जीव एकलाहि इस संसारमें आताहै और फिर एकलाहि चलाजाताहै इसलिये किसीके लिये शोक करना व्यर्थ है इति ॥ २५ ॥

शोकेन परितापेन रोदनेन च भूपते ।
न मृतः पुनरायाति ततः शोको निरर्थकः २६

तथा हे भूपते! शोक करने वा परिताप कर-नेसें वा रोने पीटनेसें मरा हुया जीव फिर आता नहिहै इसलिये शोक करना निरर्थक है इति २६

अहन्यहनि भूतानि व्रजंतीतो यमालयम् ।
त्वयापि तत्र गंतव्यं ततः शोको निरर्थकः २७

तथा हेराजन्! दिनदिनप्रति अनेक भूतप्राणी मरमरकरके यमपुरीको चलेजाते हैं और तैंनेभी वहांहि जाना है इसलिये शोक करना निरर्थक है इति ॥ २७ ॥

स्वप्नोपलब्धवित्तस्य चौर्ये का परिदेवना ।
संसारः स्वप्नतुल्योऽयं ततः शोको निरर्थकः२८

किंच हे राजन्! जैसे किसीको स्वप्नमें वहुतसा धन मिले और फिर उस धनको चोर लेजावें तो बुद्धिमान् पुरुष जागनेसे उसकेलिये रोता पीटता वा शोक करता नहिहै तैसेहि यह संसारभी स्वप्नके समान है इसलिये इसमें किसीके नष्ट होनेसें शोक करना व्यर्थ है इति ॥ २८ ॥

यथा वस्त्रं परित्यज्य पुराणं धारयेन्नवम् ।
जनस्तथैव जीवोऽयं देहाद्देहांतरं व्रजेत् ॥२९॥

किंच जैसे पुरुष पुराणे वस्त्रको छोडकर दूसरे नवीन वस्त्रका धारण करता है तैसेहि यह जीवात्माभी एकशरीरको छोडकरके दूसरे शरीरमें चलाजाताहै इति ॥ २९ ॥

वस्त्राणां तु परित्यागान्नैवान्यः पुरुषो भवेत्
तद्वज्जीवस्य नित्यत्वं ज्ञात्वा शोकं परित्यज ३०

सो जैसे पुराणे वस्त्रोंके त्याग करके दूसरे नवीन पहरनेमें पहरनेवाला पुरुष वदल नहि जाता है तैसेहि जीवात्माकोभी नित्य अविनाशी समझकर हे राजन्! तेरेको शोकका परित्याग करदेना चहिये इति ॥ ३० ॥

शोकः पापात्मभिः कार्यो येषामग्रे महद्भयम्।
पुण्यात्मनां तु मृत्युः स्याद्धर्षायैव महीपते ३१

किंच हे महीपते! मरणेका भय वा शोक तो पापी पुरुषोंको करना चहिये जिनकेलिये आगे परलोकमें नरकमें पडने और दुःख भोगनेका वडा भारी भय होता है और पुण्यात्मा पुरुषोंका मरणा तो उलटा हर्षका कारण होवेहै क्योंकि उनको तो परलोकमें उत्तम गति और परम स्वर्ग आदि सुखकी प्राप्ति होतीहै इति॥ ३१ ॥

अनेकयत्नैर्जीवोऽयं कुरुते वस्तुसंचयम् ।
देहं च पोषयत्यत्र साधनैर्बहुभिस्तथा ॥ ३२ ॥
ततो वियोगतस्तेषां दुःखं प्राप्नोति दुस्तरम् ।
अज्ञानवशतो राजन्ममतामूढचेतनः ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! यह जीव अनेक यत्न करकरके अपने शरीरनिर्वाहके लिये वहुतसी वस्तुवोंका संग्रह करता है तथा अपनी देहकोभी खानपान आदि अनेक उपायोंसे पालन पोषण करता है तो फिर मरणकालमें तिन पदार्थोंके वा शरीरके वियोग होनेसें अज्ञानके कारण मोह ममतामें फसाहुया अज्ञानी जीव वडेभारी दुःखको प्राप्त होताहै इति ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

ज्ञानवांस्तु परित्यज्य ममतामोहबंधनम् ।
संयोगे च वियोगे च नैव हृष्यति शोचति ३४

और ज्ञानवान् पुरुष तो सर्व ममतामोहके बंधनको छोडकरके वाह्य पदार्थोंके वा शरीरके संयोग वा वियोगमें हर्षशोकको प्राप्त नहि होता अर्थात् सर्वदाकाल शांतस्वरूप रहताहै इति ३४

तस्मात्त्वं च महाराज ज्ञानवानसि सर्वथा ।
चिंतां शोकं भयं हित्वा स्वस्थचित्तः सदा भव ॥

सो हे राजन्! तूंभी सर्व प्रकारसे ज्ञानवान् है इसलिये सर्वप्रकारकी चिंता शोक और भयका परित्याग करके सर्वदाकाल शांतचित्त होकर रहो इति ॥ ३५ ॥

अहंतां ममतां त्यक्त्वा देहे गेहे च बंधुषु ।
भवबंधविमुक्त्यर्थं कुरु यत्नं महीपते ॥ ३६ ॥

तथा हे महीपते ! तूं अपने घर माल शरीर और अपने सर्व कुटुंबियोंमें अहंताममताको छोड-करके जन्मरण संसारबंधनकी मुक्तिकेलिये यत्न कर इति ॥ ३६ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां शोकप्रहारनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

शोकमोहपरीतस्य प्रतिबद्धस्य कर्मभिः ।
कथं मुक्तिर्भवेत्तूर्णं जीवस्यास्य महामुने ॥१॥

राजा बोले हे महामुनीश्वर ! आपने कहा कि मुक्तिकेलिये यत्न करना चहिये सो हे भगवन् ! शोक और मोहसें घिरे हुये तथा कर्मोंके बंधनोंसें बंधे हुये जीवकी किसप्रकारसें मुक्ति होवेहै सो कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ १ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

ईश्वराराधनं कुर्वन्यस्तु योगं समभ्यसेत् ।
निश्चयेन महाराज तस्य मुक्तिः प्रजायते ॥२॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे महीपाल ! जो पुरुष ईश्वरका आराधन करताहुया दीर्घकालपर्यंत योगका भलीप्रकारसें अभ्यास करताहै उसकी निश्चय करके मुक्ति होवेहै इति ॥ २ ॥

राज्ञोवाच ।

योगः कः प्रोच्यते प्राज्ञ तदभ्यासश्च कीदृशः ।
कथं तस्य भवेत्सिद्धिर्ब्रूहि मे योगवित्तम ॥३॥

राजा बोले हे प्राज्ञ सर्वबुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भगवन् ! आपने कहा कि योगाभ्याससें मुक्ति होवे है सो योग किसको कहते हैं और तिसका

अभ्यास किसरीतिसें होवे है तथा तिस योगकी सिद्धि किससें होतीहै सो हे सर्वयोगजाननेवालोंमें श्रेष्ठ! कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ ३ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

शृणु भूप प्रवक्ष्यामि योगसाधनमुत्तमम् ।
यस्याभ्यासवशान्नूनं परां सिद्धिमवाप्स्यसि ४

ब्रह्मानंदजी बोले हे भूप! अब मैं तेरेको योग-साधन करनेका उत्तम प्रकार कथन करताहूं जिसके अभ्यास करनेसें तूं अवश्य परमसिद्धिको प्राप्त होवेगा इति ॥ ४ ॥

प्राणापानसमायोगो योगश्चित्तात्मनोस्तथा ।
यत्र जीवेशयोर्योगस्तं योगं विद्धि भूपते ॥५॥

हे भूपते! जिसके अभ्याससें प्राण और अ-पानकी एकता होवे तथा चित्तकी और आत्माकी एकता होवेहै तथा जीव और ईश्वरकी एकता होवेहै उसको तूं योग जान अर्थात् यह योगका लक्षण है इति ॥ ५ ॥

चित्तवृत्तिनिरोधो हि योग इत्यभिधीयते ।
प्राणसंयमनेनैव चित्तं भूप निरुद्ध्यते ॥ ६ ॥

हे भूप! (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) इस पातंजलसूत्रके अनुसार चित्तकी वृत्तियांका जो निरोध करना है उसको योग कहतेहैं सो चित्तकी वृत्तियां प्राणके निरोध होनेसेंहि रुकसकतीहैं अन्यथा नहि इति ॥ ६ ॥

तस्मादादौ प्रयत्नेन प्राणायामं समभ्यसेत् ।
सम्यग्विधिविधानेन योगसिद्ध्यभिलाषुकः ७

इसलिये योगसिद्धिकी अभिलाषावाले पुरुषको भलीप्रकार विधिपूर्वक प्रथम प्राणायामका अभ्यास करना चहिये इति ॥ ७ ॥

प्राणायामं विना यस्तु योगाभ्यासं समाचरेत् ।
तस्य सिद्धिर्न जायेत राजन् वर्षशतैरपि ॥८॥

और हे राजन्! जो पुरुष प्राणायाम किये-विनाहि योगका अभ्यास करताहै तो उसको सेंकडोवर्षोंमेंभी योगकी सिद्धि नहि होवेहै इति ॥ ८ ॥

तस्याहं ते प्रवक्ष्यामि विधिमत्र समासतः ।
यथा योगस्य संसिद्धिः सत्वरं जायते ध्रुवम् ९

हे राजन्! इसलिये मैं तेरेको तिस प्राणायामकी विधि संक्षेपसें कथन करताहूं जिसके करनेसें शीघ्रहि निश्चयकरके योगकी सिद्धि होवेहै इति ॥ ९ ॥

यमैश्च नियमैर्युक्तः स्वल्पाहारपरायणः ।
सम्यग्दृढासनो भूत्वा प्राणायामं समाचरेत् १०

योगसाधनाकी इच्छावालेको प्रथम अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच प्रकारके यमोंकरके तथा ईश्वराराधन शौच संतोष तप जप इन पांच प्रकारके नियमोंकरके युक्त होकरके और स्वल्प स्निग्ध सात्विकी भोजन करतेहुये तथा भलीप्रकारसें स्वस्तिकासन पद्मासन सिद्धासन इत्यादि आसनोंको दृढ करके पीछे प्राणायामके अभ्यासका प्रारंभ करना चहिये इति ॥ १० ॥

वामनासापुटात्प्राणं प्रथमं पूरयेत्सुधीः ।
दक्षिणाद्रेचयेत्पश्चात्पुनस्तेनैव पूरयेत् ॥ ११ ॥
रेचयित्वा पुनर्वामाद्वामेनैव च पूरयेत् ।
पुनर्दक्षात्पुनर्वामात्पुनर्दक्षाद्द्रुतं द्रुतम् ॥ १२ ॥

हे राजन् ! बुद्धिमान् साधक पुरुष प्रथम वामनासाद्वारसें प्राणको उदरमें पूरण करे और पीछे तत्काल दहने नासाद्वारसें उसको रेचन कर-देवे फिर तत्काल दहने नासाद्वारसें पूरक करके वामनासाद्वारसें रेचन करे फिर तत्काल वाम-नासाद्वारसें पूरक करके दहनेसें रेचन करे और फिर दहनेसें पूरक करके वामेसें रेचन करदेवे इति ॥ ११ ॥ १२ ॥

भस्त्रावल्लोहकारस्य कुर्याद्रेचकपूरकौ ।
दशधावर्त्तनं कृत्वा ततः प्राणं विरेचयेत् ॥ १३ ॥

इसप्रकार दोनों नासापुटोंसें वारंवार जैसे लुहारकी धोकनी चलतीहै उसीप्रकार जलदी जलदी प्राणका रेचक पूरक दशवार करके पीछे प्राणको वामनासापुटसें रेचन करे इति ॥ १३ ॥

ततो वामपुटात्पीत्वा कुंभयेदुदरे सुधीः ।
प्राणं यथाबलं राजंस्ततो दक्षेण रेचयेत् ॥१४॥

पीछे वामनासाद्वारसें प्राणको पूरक करके अपनी शक्तिके अनुसार पेटमें कुंभक करे पीछे धीरेधीरे दहने नासापुटसें रेचन करदेवे इति ॥ १४ ॥

पुनरावर्त्तनं कृत्वा ततो दक्षेण पूरयेत् ।
कुंभयित्वा यथाशक्ति वामनासापुटात्त्यजेत् १५

फिर दशवार दोनों नासाद्वारोंमें फिराय करके दहने नासापुटसें प्राणको पूरक करे और यथाशक्ति पेटमें कुंभक करके फिर वामनासाद्वारसें रेचन करदेवे इसीप्रकार उलट पलट दोनों नासापुटोंसें प्राणायाम करना चहिये इति ॥ १५ ॥

भस्त्रिकाकुंभकं प्राहुरिमं योगविशारदाः ।
सर्वदोषहरं वायोर्वशीकरणमुत्तमम् ॥ १६ ॥

इस प्राणायामको योगविद्याके जाननेहारे

योगीलोक भस्त्रिका नामका प्राणायाम कहतेहैं इसके अभ्याससें शरीरके कफआदि सर्व दोष दूर होजातेहैं और प्राणवायुका उत्तम वशीकरण होताहै इति ॥ १६ ॥

यथातिवेगतो धावञ्जनः श्रांतो निवर्तते ।
तथैव भस्त्रिकाभ्यासात्प्राणवायुः स्थिरो भवेत्

जैसे अतिवेगसें दौडता हुया पुरुष अंतमें थककरके वैठजाताहै तैसेहि भस्त्रिकाप्राणायामके अभ्याससें कुंभकमें प्राणवायु देरतक स्थिर होजाताहै इसलिये यह सर्व प्राणायामोंमें श्रेष्ठ है इति ॥ १७ ॥

एवं प्रातस्तथा सायं पंचविंशति कुंभकान् ।
कुर्यात्क्रमेण राजेन्द्र स्निग्धाहारपरायणः १८

हे राजेन्द्र ! इसप्रकार प्रातः तथा सायंकाल नित्यंप्रति घृत दुग्ध आदि स्निग्ध भोजन करतेहूये दोनों वक्त पचीस पचीस प्राणायामोंका अभ्यास करना चहिये इति ॥ १८ ॥

मासत्रयेण युक्त्यैवं कुर्वतः प्राणनिग्रहम् ।
नाडीशुद्धिर्भवेन्नूनं साधकस्य महीपते ॥ १९ ॥

हे महीपते ! इसप्रकार उक्तरीतिसें तीनमासपर्यंत युक्तिपूर्वक भस्त्रिकाप्राणायामका अभ्यास करनेसें साधक पुरुषकी निश्चयकरके शरीरकी नाडियोंकी शुद्धि होवेहै इति ॥ १९ ॥

शरीरे लघुतावृद्धिर्वह्नेर्जठरवर्तिनः ।
कोमलत्वं च गात्राणां नाडीशुद्धेस्तु लक्षणम् २०

नाडीशुद्धि होनेपर अभ्यासीके शरीरमें हलकापण होजावेहै और जठराग्निकी वृद्धि होवेहै तथा शरीरके सर्व अंग कोमल होजातेहैं यह नाडीशुद्धि होनेके लक्षण हैं इति ॥ २० ॥

कुंभकस्य प्रमाणं तु मात्राभिरवधारयेत् ।
दिनेदिने यथा शीघ्रं वृद्धिः स्यात्प्राणधारणे २१

और कुंभकका प्रमाण मात्रायोंसें नित्यंप्रति देखलेना चहिये जिससें शीघ्रहि कुंभकमें प्राणधारण करनेकी शक्तिकी वृद्धि होतीरहै इति ॥ २१ ॥

ओंकारोच्चारणं कुर्यान्न द्रुतं न विलंबितम् ।
मनसा कुंभकाले तु मात्रा सा परिकीर्तिता२२

प्राणके कुंभकालमें अपने पेटमें मनसें न तो विशेप जलदी और न विशेप धीरे जो ओंकारका साधारण रीतिसें उच्चारण करना है उसको योगीलोक मात्रा कहते हैं इति ॥ २२ ॥

यदैककुंभकस्य स्याद्राजन्मात्राशतत्रयम् ।
तदोत्तमं विजानीयात्प्राणायामं विचक्षणः २३

हे राजन् ! जिसकालमें एक कुंभककी तीन-सौके आसपास मात्रा होजावें तव अभ्यासी पुरुषको प्राणायाम उत्तम समझना चहिये इति ॥ २३ ॥

उत्तमे प्राणसंरोधे कुर्याद्बंधत्रयं वुधः ।
तस्यात्र लक्षणं भूप प्रोच्यमानं निबोध मे २४

हे भूप ! जब उत्तम प्राणायाम होजावे तव उसकालमें प्राणायामके साथ तीन प्रकारके बंध

करने चहिये सो तिन तीनों वंधोंके लक्षण मैं तेरेको कहताहूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ २४ ॥

प्रथमो मूलवंधः स्यात्ततो जालंधराभिधः।
उड्डियानस्तृतीयश्च प्राणवंधनहेतवः ॥ २५ ॥

तिनमें पहले वंधका नाम मूलवंध है और दूसरेका नाम जालंधरवंध है तथा तीसरेका नाम उड्डियानवंध है इसप्रकारसें तीनप्रकारके वंध होतेहैं इनसें प्राणका भलीप्रकारसें वंधन होवेहै इसलिये इनको वंध कहते हैं इति ॥२५॥

गुदमेढ्रांतरे सम्यग्वामपार्ष्णिं नियोजयेत्।
मूलबंधो भवेदेवमपानस्यावरोधकः ॥ २६ ॥

गुदा और लिंगके वीच मध्यभागमें वांयें पैरकी एडीको भलीप्रकारसें दवाकर लगाकर सिद्धासनसें बैठनेसें मूलवंध होताहै इस मूलवं-धके अभ्यास करनेसें अपानवायुकी नीचेगतिका निरोध होवेहै इति ॥ २६ ॥

चिवुकं कंठकूपस्य न्यसेदुपरिभागतः।
बंधो जालंधरः प्रोक्तो नाडीजालनिरोधकः २७

तथा मुखकी ठोडीको जो कंठके नीचे कूपके ऊपर लगानाहै उसको जालंधरबंध कहतेहैं इस बंधके करनेसें ऊपरको जानेवाली सर्व नाडियोंकी गतिका निरोध होवेहै इति ॥ २७ ॥

नाभेः पश्चिमतानं तु बलात्कुर्यात्पुनः पुनः ।
उड्डियानो भवेद्बंधः प्राणोन्नयनकारकः ॥२८॥

तथा जो पेटकी नाभिको वारंवार जोरसें पीछे पीठकीतरफ तानना है उसको उड्डियानबंध कहतेहैं इस बंधके अभ्यास करनेसें प्राणोंका पीठकीतरफसें मेरुदंडद्वारा ऊपरको गमन होवेहै इति ॥ २८ ॥

बंधत्रयमिदं योगे योगिनामुपकारकम् ।
बंधैरेव यतः सिद्धिः समाधेर्भूप जायते ॥२९॥

हे भूप! यह तीनों प्रकारके बंध योगाभ्यास करनेमें योगियोंके लिये बडेभारी उपयोगी हैं क्योंकि इन बंधोंसेंहि योगसमाधिकी सिद्धि होवेहै इति ॥ २९ ॥

मूलबंधादपानस्य गतिरूर्ध्वं प्रजायते ।
जालंधरात्तथा प्राणस्त्वधोगामी भवेत्पुनः ३०
प्राणापानौ मिलित्वाऽथ सुषुम्नावदनांतरे ।
उड्डियानेन बंधेन विशतो नात्र संशयः ॥३१॥

मूलबंधसें तो अपानकी गति नीचेसें ऊपरको होजातीहै और जालंधरबंधसे प्राणकी गति कंठके रुकनेसें नीचेको होजातीहै तथा उड्डियानबंधसें प्राण और अपान दोनों मिलकर सुषुम्नानाडीमें प्रवेशकर जातेहैं इसमें संशय नहिहै इति ॥ ३० ॥ ३१ ॥

एवमभ्यासतो नित्यं कुंभकस्य निरंतरम् ।
ब्रह्मरंध्रं प्रविश्याथ प्राणो भवति निश्चलः ३२

इसप्रकार फिर बहुत कालपर्यंत निरंतर कुंभकका अभ्यास करनेसें प्राण ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश करके निश्चल होजाताहै इति ॥ ३२ ॥

प्राणे निश्चलतां याते ब्रह्मरंध्रे महीपते ।
श्वासोच्छ्वासगतेर्लोपात्समाधिर्जायते ध्रुवम् ॥

हे महीपते ! जब प्राण ब्रह्मरंध्रमें चिरकालपर्यंत

स्थिर होजाताहै तो तव श्वासप्रश्वासकी गतिके लोप होनेसे समाधि होजातीहै अर्थात् प्राणके साथ मनभी लीन होजाताहै इति ॥ ३३ ॥

समाधिस्थो न जानाति शुभाशुभमरिंदम ।
विस्मृत्य सकलं बाह्यं ब्रह्मण्येव विलीयते॥३४॥

हे अरिंदम शत्रुवोंके नाश करनेहारे राजन् ! समाधिमें स्थितभये योगीको शुभ वा अशुभ बातका ज्ञान नहि रहताहै अर्थात् बाहिरके सर्व पदार्थोंको भूलकरके केवल निर्विकल्प ब्रह्मस्वरूपमें लीन होजाताहै इति ॥ ३४ ॥

ततोऽभ्यासबलात्तत्र स्थितिं संवर्धयेच्चिरम् ।
यथा स्यादधिको नित्यं समाधिर्मोदवर्धनः ३५

फिर योगीको चहिये कि निरंतर अभ्यास करके ब्रह्मरंध्रमें प्राणके चिरकालपर्यंत ठहरनेकी स्थितिको बढावे जैसे कि बहुत कालतक आनंदके देनेहारी समाधिकी सिद्धि होवे इति ॥३५॥

चित्तस्य विलये जाते समाधौ नृपसत्तम ।
ब्रह्मणः परमं ज्योतिर्दृश्यते दिव्यचक्षुषा ३६

हे नृपसत्तम ! सब राजायोंमें श्रेष्ठ राजन् ! समाधिमें चिरकालपर्यंत चित्तके लीन होनेसें योगीको दिव्यदृष्टिसें ब्रह्मकी परमज्योतीका दर्शन होवेहै इति ॥ ३६ ॥

तत्राभ्यासक्रमेणेदं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
करामलकवद्राजन् योगी पश्यति निश्चितम् ३७

हे राजन् ! फिर दीर्घकालपर्यंत समाधिका अभ्यास होनेसें हाथमें आवलेके फलकी न्याईं चराचर सर्व पदार्थोंके सहित योगीको दिव्य-दृष्टिसें निश्चयकरके तीनों लोक दीखने लगजा-तेहैं इति ॥ ३७ ॥

विशेषाभ्यासतः प्राणो योगिनो वशतामियात्
स यथा प्रेरयत्येनं तत्रैवायाति सत्वरम् ॥३८॥

फिर नित्यंप्रति समाधिके विशेष अभ्यास होनेसें शरीरका संपूर्ण प्राण योगीके वशमें होजाताहै तो फिर जैसे जिधर योगी प्राणोंको लेजाना चाहताहै वैसे उधरकोहि शीघ्र चलेजाते हैं इति ॥ ३८ ॥

परकायप्रवेशं तु कामयेद्यदि योगवित्।
त्यक्त्वा देहं विशेत्प्राणः परदेहं न संशयः३९

तिसकालमें जो योगीकी परशरीरमें प्रवेश करनेकी इच्छा होवे तो शरीरसें वाहिर चित्तकी धारणा करनेसें प्राण शरीरसें वाहिर निकलजातेहैं और फिर परकायामें प्रवेश करजातेहैं इसमें संशय नहिंहै इति ॥ ३९ ॥

अथवा मोक्षमन्विच्छन् ब्रह्मरंध्रसमाधिना।
प्राणमुन्मोचयित्वोर्ध्वं परे ब्रह्मणि संवसेत् ४०

अथवा जो योगीकी इच्छा कैवल्यमोक्षपदको प्राप्त होनेकी होवे तो सर्वशरीरके प्राणोंको ब्रह्मरंध्रमें स्थिर करके योगधारणासें प्राणोंको ऊपरको छोडकरके सर्वव्यापक पूर्ण परब्रह्ममें निवास करे अर्थात् ब्रह्मके स्वरूपमें लीन होजावे इति ४०

हठयोगसमाधेस्तु प्रकारोयं निरूपितः।
राजयोगेन चाप्येवं समाधिर्जायते नृप ॥४१॥

हे नृप! यह मैंने तेरेको हठयोगसमाधिका

प्रकार निरूपण कियाहै इसीप्रकार राजयोग-सेंभी समाधिकी सिद्धि होवेहै ऐसा जानना चहिये इति ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां हठयोगनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

राजयोगसमाधेश्च साधनं वद मे विभो ।
यस्याभ्यासेन कैवल्यं व्रजेयं कृपया तव ॥ १ ॥

राजा वोले हे विभो ! आपने कहा कि राजयोगसेंभी समाधिकी सिद्धि होवेहै सो अव राजयोग समाधिके साधन करनेका प्रकारभी मेरेको कृपा करके कथन करो जिसके अभ्यास करनेसें मैं कैवल्यमोक्षपदको प्राप्त होवूं इति ॥ १ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

राजन्तं दीप्यमानं तं परमात्मानमव्ययम् ।
योगिनां प्रापयेद्यस्तु राजयोगः स कीर्तितः २

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन्! जिसलिये राजमान अर्थात् प्रकाश्यमान निर्विकार परमात्माके स्वरूपको योगियोंको प्राप्त कराताहै इसलिये इसको राजयोग कहते हैं इति ॥ २ ॥

राजत्वात्सर्वयोगानां राजयोगस्तथोदितः ।
तस्याहं साधनं सम्यक् कथयामि तवानघ ३

हे अनघ निष्पाप राजन्! दूसरे सब योगोंका राजा होनेसेंभी यह राजयोग कहलाताहै अब तिसके साधन करनेकी विधि मैं तेरेको कथन करताहूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ ३ ॥

हठयोगे विशेषेण प्राणरोधः परो मतः ।
राजयोगे तु चित्तस्य रोधनं सिद्धिकारणम् ४

हे राजन्! हठयोगमें तो विशेषकरके प्राणका रोकनाहि योगियोंने मुख्य माना है और राजयोगमें चित्तका निरोध करना मुख्य सिद्धिका कारण माना है इतना हठयोग और राजयोगमें फरक है इति ॥ ४ ॥

हठयोगं समाप्यादौ राजयोगं ततोऽभ्यसेत् ।
हठयोगं विना यस्माद्राजयोगो न सिद्ध्यति ५

सो हठयोगको पहले पूरा करके पीछे राज-योगका साधन करना चहिये क्योंकि हठयोगके साधन किये विना राजयोगकी सिद्धि नहि होती है इति ॥ ५ ॥

त्रिविधं राजयोगस्य साधनं परिकीर्तितम् ।
धारणा च तथा ध्यानं समाधिश्च यथाक्रमम् ६

सो तिस राजयोगका तीन प्रकारका साधन होवेहै जैसे पातंजलिआदि योगीश्वरलोकोंने कथन किया है प्रथम धारणा दूसरा ध्यान और तीसरा समाधि इन तीनोंका क्रमसें अभ्यास होवेहै इति ॥ ६ ॥

तिनमें प्रथम धारणाका निरूपण करते हैं

धारणाया विधानं तु शृणु तत्र महीपते ।
यथोक्तं योगशास्त्रेषु मुनिभिर्योगवित्तमैः ॥७॥

हे राजन्! अब तूं तिन तीनोंमेंसें प्रथम धारणाकी विधि श्रवण कर जैसी कि-योगशास्त्रोंमें योगविद्याके जाननेहारे श्रेष्ठ मुनीश्वर लोकोंने कथन करीहै इति ॥ ७ ॥

सुखासने समासीनो निर्जने विजितेन्द्रियः ।
गुरुनिर्दिष्टमार्गेण चित्तमेकत्र धारयेत् ॥ ८ ॥

धारणाकी साधना करनेवाले पुरुषको चहिये कि सर्व इन्द्रियोंको अपने वशमें करके सुखपूर्वक एकांतस्थानमें आसनमें वैठ करके अपने योगी गुरुकी वताईहुई रीतिसें एक जगा चित्तको धारण करनेका अभ्यास करे इति ॥ ८ ॥

नासाग्रे हृदयांभोजे ब्रह्मरंध्रे तथैव च ।
नाभिदेशे च राजेन्द्र भ्रूमध्ये च विशेषतः ॥९॥

हे राजन्! नासाके अग्रभागमें वा हृदयकमलमें वा ब्रह्मरंध्रमें वा नाभिस्थानमें वा विशेष करके भ्रूमध्यमें चित्तको धारण करनेका अभ्यास करे इति ॥ ९ ॥

अथवा बाह्यदेशेषु धारणाभ्यासमाचरेत् ।
दीपे चन्द्रे च नक्षत्रे वृक्षकांडे च धीरधीः १०

अथवा धीरजवान् अभ्यासी पुरुष शरीरसे वाहिर दीपकमें वा चंद्रमंडलमें वा किसी वडे तारेमें वा किसी वृक्षकी ऊंची शाखामें चित्तकी धारणाका अभ्यास करे इति ॥ १० ॥

गिरीणां मंदिराणां च शिखरेषु च दूरतः ।
स्थिरदृष्टियुतं चित्तं धारयेदचलं नृप ॥ ११ ॥

तथा हे नृप ! पहाडोंके ऊंचे शिखरोंमें वा किसी मंदिरके ऊंचे वुरुजमें दूरसें स्थिर अचल दृष्टिके सहित चित्तवृत्तिको धारण करनेका अभ्यास करे इति ॥ ११ ॥

चंचलत्वात्स्वभावेन चित्तं गच्छेद्यतो यतः ।
ततस्ततो नियम्याशु धारणादेशमानयेत् १२

धारणा करते वकत स्वभावसें चंचल जो चित्त है सो वीचमें जहां जहां चलाजावे तो अभ्यासी पुरुषको चहिये कि तहांतहांसें उसको रोक करके वारवार धारणाके स्थानमें लगावे इति ॥ १२ ॥

यदा संधारितं चित्तमेकतानं स्थिरं भवेत् ।
लक्ष्यदेशे महीपाल तदा स्याद्धारणा दृढा १३

हे महीपाल ! जिस कालमें धारणाके लक्ष्य-स्थानमें लगाहुया चित्त एकतान स्थिर होजावे

तव धारणा दृढ होती है ऐसे जानना चहिये इति ॥ १३ ॥

दृढायां धारणायां तु किं न सिद्ध्यति भूतले ।
यद्यद्वाञ्छति योगीन्द्रस्तत्तद्धारणयाप्नुयात् १४

हे राजन्! धारणाके दृढ होजानेसें ऐसी पृथिवीमें क्या वस्तु है जो सिद्ध नहि होसकती अर्थात् सबी सिद्ध होसकती हैं सो जिसजिस बातकी योगीको इच्छा होवेहै सोसो सब धारणासें सिद्ध करलेवेहै इति ॥ १४ ॥

नासाग्रे हृदयांभोजे भ्रूमध्ये च निरंतरम् ।
धारणां कुर्वतो दिव्यज्योतिषो दर्शनं भवेत्१५

जैसे कि नासाके अग्रभागमें वा हृदयकमलमें वा विशेष करके भ्रूमध्यमें धारणा करनेसें योगीको दिव्य ब्रह्मज्योतिका दर्शन होवे है इति ॥ १५॥

आदित्यमंडले कुर्वन् धारणां दिवसागमे ।
यावत्सूर्यप्रकाशः स्यात्तावद्विश्वं प्रपश्यति १६

तथा प्रातःकाल सूर्यके उदय होनेके वकतमें सूर्यमंडलमें धारणा करनेसें जहांतक ब्रह्मांडमें

सूर्यका प्रकाश होता है उतनी दूर सर्व पदार्थ योगीको देखनेमें आते हैं इति ॥ १६ ॥

रात्रावेकांतगः कुर्याद्धारणां चन्द्रमंडले।
यदि योगी ततो व्यूहं नक्षत्राणां विलोकयेत् १७

तथा रात्रिमें एकांतस्थानमें वैठकरके चन्द्रमंडलमें धारणा करनेसें योगीको आकाशके सव तारागणोंकी रचनाका ज्ञान होजावेहै इति १७

ध्रुवे तु धारणां कृत्वा तारकाणां समंततः।
गतिं सम्यग्विजानीयाद्योगी सुस्थिरमानसः॥

तथा ध्रुवतारामें धारणा करनेसें सर्वतरफसें सव तारोंकी चालका योगीको भलीप्रकारसें वोध होवे है इति ॥ १८ ॥

मृगेन्द्रादि बलेष्वेवं धारणां कुर्वतो ध्रुवम्।
महाबलत्वं स्याद्देहे योगिनो नात्र संशयः १९

तथा सिंह हाथी आदिके वलमें तन्मयी धारणा करनेसें योगीके शरीरमें सिंह और हाथी जैसा वल होजावेहै इसमें संशय नहि है इति ॥ १९ ॥

वृक्षाग्रे पर्वताग्रे वा धारणां कुर्वतश्चिरम् ।
भवेदाकाशगामित्वं सूक्ष्मदेहेन योगिनः २०

तथा वृक्षकी शाखा वा पर्वतके शिखरमें चिरकालपर्यंत दृढ धारणा करनेसें योगीका स्थूलदेहको छोडकरके सूक्ष्मदेहसें आकाशमें गमन होवेहै इति ॥ २० ॥

देहे मृतस्य वा राजञ्जीवतश्च शरीरिणः ।
योगीन्द्रो धारणां कृत्वा प्रविशेद्रोधवर्जितः २१

हे राजन्! मरेहुये जीवके शरीरमें वा जीतेहुये प्राणीके शरीरमें धारणा करनेसें योगी सूक्ष्मरूपसें विना रोकटोक परकायामें प्रवेश करजाताहै इति ॥ २१ ॥

इत्याद्यन्यत्र सर्वत्र यथाकार्यं यथाक्रमम् ।
धारणायाः प्रयोगेण साधयेत्सिद्धिमात्मनः २२

इत्यादि औरभी जहांजहां जैसाजैसा कार्यका प्रसंग होवे तहांतहां योगीको चहिये कि तैसी-तैसी धारणा करके अपने कार्यको सिद्ध करलेवे इति ॥ २२ ॥

इसप्रकार धारणाका निरूपण करके अब ध्यानका वर्णन करते हैं।

ध्येयाविष्टं यदा चित्तं तैलधारेव निश्चलम्।
जायते पृथिवीपाल तद्ध्यानं परिकीर्तितम् २३

और हे पृथिवीपाल ! जिस कालमें धारणाके परिपक्व होनेसें लक्ष्य पदार्थमें लगाहुया चित्त तेलधाराकी न्यांई एकतार निश्चल होजाताहै उसको ध्यान कहते हैं इति ॥ २३ ॥

ध्यानं तु द्विविधं प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं तथा।
सगुणं पूर्वमुद्दिष्टं निर्गुणं श्रूयतां नृप ॥ २४ ॥

हे नृप ! सो ध्यान सगुण और निर्गुण भेदसें दो प्रकारका होवे है तिनमें सगुणध्यानकी विधि तो पीछे नवमें अध्यायमें कथन कर आयेहैं अब तूं निर्गुणध्यानकी विधि श्रवण कर इति ॥ २४ ॥

पद्मासनं समास्थाय स्वस्तिकं वा यथासुखम्।
ध्यायेन्नित्यं भ्रुवोर्मध्ये मीलिताक्षो निरंतरम् ॥

पद्मासनमें वा स्वस्तिकासनमें बैठ करके और

दोनों नेत्रोंको बंद करके दोनों भ्रुवोंके बीचमें त्रिकुटीमें चित्तको एकाग्र धारण करके ब्रह्म-ज्योतिका ध्यान करे इति ॥ २५ ॥

सूर्यकोटिसमाभासं शशिकोटिसुशीतलम् ।
प्रज्वलद्दीपकाकारं ब्रह्मज्योतिरनामयम् ॥२६॥

उस ब्रह्मज्योतिका स्वरूप कोटिसूर्योंके समान प्रकाशवान् है और कोटिचंद्रमाके समान शीतल है तथा जलतेहुये दीपककी ज्योतके समान ध्यान करना चहिये इति ॥ २६ ॥

सायंप्रातः सदा नित्यमेवमभ्यसतः क्रमात् ।
दिव्या दृष्टिर्भवेद्राजन् साधकस्य शनैः शनैः ॥

इस प्रकार नित्यंप्रति सायंकाल और प्रातःकाल दोनों वकत अभ्यास करनेसें क्रमसें धीरेधीरे योगीको दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ २७ ॥

किस क्रमसें दिव्यदृष्टि होवेहै सो दिखाते हैं।

प्रथमं तारकालोकं ततश्चन्द्रं प्रपश्यति ।
आदित्यमंडलं पश्चाद्विद्युतं ध्यानमास्थितः २८

ध्यान करतेहुये योगीको पहले पहले तारा

जैसा प्रकाश दीखता है और पीछे चन्द्रमाके मंडलजैसा प्रकाश देखनेमें आता है तथा तिसके पीछे सूर्यमंडलजैसा प्रकाश देखनेमें आता है इति ॥ २८ ॥

नानाविधानि दिव्यानि स्थानान्याकाशमंडले।
देवगंधर्वसिद्धाश्च दृश्यंतेऽम्बरचारिणः ॥ २९ ॥

तथा आकाशमंडलमें अनेकप्रकारके देवताओंके दिव्य स्थान देखनेमें आते हैं और आकाशमें विचरतेहुये देवता गंधर्व और सिद्धलोक भी देखनेमें आते हैं इति ॥ २९ ॥

ब्रह्मज्योतिःप्रकाशस्य विस्तारो जायते ततः।
यत्रेदं दृश्यते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३०॥

तिसके अनंतर दीर्घकालपर्यंत अभ्यासके परिपक्व होनेसें सर्वव्यापक ब्रह्मज्योतिके प्रकाशका विस्तार होवेहै तो उस प्रकाशमें योगीको चराचर जीवोंके सहित तीनों लोक देखनेमें आते हैं अर्थात् तिस कालमें पूर्ण दिव्यदृष्टि होवेहै इति ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा ब्रह्ममयं विश्वं ब्रह्मरूपः स्वयं भवेत् ।
कर्मबंधाद्विनिर्मुक्तः कैवल्यं प्रतिपद्यते ॥ ३१ ॥

इसप्रकार सर्व जगत्को ब्रह्मरूप देख करके योगी आपभी ब्रह्मस्वरूप होजाता है और फिर सर्व कर्मबंधनोंसें रहित भया कैवल्य मोक्षपदको प्राप्त होताहै इति ॥ ३१ ॥

इसप्रकार ध्यानका निरूपण करके अब समाधिका वर्णन करते हैं ।

ध्यानस्य परिपाकेन समाधेर्योग्यता भवेत् ।
समाधानं हि चित्तस्य समाधिरभिधीयते ३२

हे राजन्! ध्यानके परिपक्व होनेसें पीछे अभ्यासी पुरुषकी समाधि करनेकी योग्यता होवेहै चित्तकी जो एकाग्र और निरुद्ध अवस्था है उसको समाधि कहतेहैं इति ॥ ३२ ॥

राजयोगसमाधिस्तु त्राटकाभ्यासतो भवेत् ।
नादश्रवणतश्चापि खेचरीमुद्रया तथा ॥ ३३ ॥

सो राजयोगकी समाधि त्राटकके अभ्याससे

और नादश्रवणके अभ्याससें तथा खेचरीमुद्राके अभ्याससें इसप्रकार तीन प्रकारके पृथक् पृथक् अभ्याससें सिद्ध होवेहै इति ॥ ३३ ॥

तिनमें पहले त्राटकके अभ्यासकी विधि निरूपण करते हैं ।

श्वेतमृत्स्नाप्रलिप्तायां भित्तौ कृत्वा मसीमयम् ।
वर्त्तुलाकारकं चिह्नं पश्येद्दूरस्थितः सुधीः ३४

बुद्धिमान् साधक पुरुषको चहिये कि पहलें सुपेद मिट्टीसें वा कलीचूनासें लिपीहुई भीतके ऊपर काली स्याहीसें एक गोल चिह्न बनावे और फिर कुछ दूर बैठकरके उसकी तरफ अचल दृष्टिसें देखनेका अभ्यास करे इति ॥ ३४ ॥

दिनानुदिनमभ्यासे क्रियमाणे यथाक्रमम् ।
लक्ष्यं विहाय संभ्रांता दृष्टिरंतर्विलीयते ॥३५॥

इसप्रकार दिनदिन नित्यप्रति क्रमसें अभ्यास करनेसें अभ्यासीकी दृष्टि थकित होकरके अंतर्मुख भई लीन होजातीहै इति ॥ ३५ ॥

दृष्टेरनु मनश्चापि लीनं भवति भूपते ।
बाह्यज्ञानं परित्यज्य समाधिस्थो भवेन्नरः ३६

तथा हे भूपते ! दृष्टिके साथ मनभी अंतर्मुख होकरके लीन होजाताहै और सर्व बाह्य प्रपंचको विस्मरण होकर योगी समाधिमें स्थित हो जाताहै इति ॥ ३६ ॥

एवं त्राटकयोगः स्यान्नादाभ्यासं निबोध मे ।
सर्वेषां योगमार्गाणां नादाभ्यासः परो मतः ॥

हे राजन् ! इसप्रकार उक्त रीतिसें त्राटकका अभ्यास होवेहै अब मैं तेरेको नादश्रवणके अभ्यासकी विधि कहताहूं सो तूं श्रवणकर क्योंकि योगके सब मार्गोंमें नादश्रवणके अभ्यासको योगीलोकोंने श्रेष्ठ माना है इति ॥ ३७ ॥

तर्जनीभ्यां पिधायोभे कर्णच्छिद्रे समाहितः ।
शृणुयान्निर्जने देशे नादमंतर्गतं सुधीः ॥३८॥

बुद्धिमान् अभ्यासी पुरुषको चहिये कि दोनों हाथोंकी तर्जनी अंगुलियोंसें दोनों कानोंके छेद बंद करके एकांतस्थानमें बैठक करके शरीरके अंद-

रमें होनेवाले अनाहत नादको श्रवण करे इति ॥ ३८ ॥

अब नाद कितने प्रकारका होवे है सो वर्णन करते हैं ।

चिणीति प्रथमो नादश्चिंचिणीति द्वितीयकः ।
घंटानादस्तृतीयः स्याच्छंखनादश्चतुर्थकः ३९

प्रथम नादमें चिणीचिणी ऐसा शब्द सुन पडताहै और दूसरे नादमें चिंचिणी ऐसा शब्द सुननेमें आता है तथा तीतरे नादमें घंटाका शब्द होता है और चौथे नादमें शंख जैसा शब्द होता है इति ॥ ३९ ॥

वीणायाः पंचमो नादः षष्ठस्तालसमो भवेत् ।
सप्तमो वेणुनादः स्यान्मृदंगस्य तथाष्टमः ४०

तथा पंचम नादमें वीणाका नाद होताहै और छठे नादमें ताल जैसा शब्द होता है तथा सातवें नादमें वंसीजैसा शब्द सुनपडता है और अष्टम नादमें मृदंगजैसा शब्द होताहै इति ४०

नवमो दुंदुभेर्नादो दशमो मेघसन्निभः ।
एवं दशविधो नादः श्रूयतेऽभ्यासतः क्रमात् ॥

तथा नवमे नादमें नगारेजैसा शब्द होताहै और दशमे नादमें मेघगर्जनजैसा शब्द सुननेमें आताहै इसप्रकार अभ्यास करनेसें दशप्रकारका नाद योगीको सुननेमें आता है इति ॥ ४१ ॥

अब इन दश प्रकारके नादोंका भिन्नभिन्न फल वर्णन करते हैं ।

यथाक्रमं फलं चापि शृणु तेषां महीपते ।
वक्ष्याम्यहमशेषेण वेदस्यानुमतेन ते ॥ ४२ ॥

हे महीपते ! अब तिन दशों नादोंका फल मैं तेरेको वेदमत(हंसउपनिषत्)के अनुसार पूर्ण रीतिसें कहता हूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ ४२ ॥

प्रथमे चिंचिणी देहे द्वितीये गात्रभंजनम् ।
तृतीये खिन्नता चित्ते शिरःकंपश्चतुर्थके ॥४३॥

हे राजन् ! प्रथम नादमें सर्व देहमें चिंचिणी जैसा झंनाटा होता है और दूसरे नादमें शरीरके सर्व अंगोंमें फूटन मालूम पडती है और तीसरे

नादमें शरीरमें विशेष थकावट होनेसें चित्तमें कुछ परिश्रम मालूम पडता है तथा चौथे नादमें योगीका शिर कांपने लगता है इति ॥ ४३ ॥

पंचमे तालुसंस्रावः षष्ठे पीयूषसेवनम् ।
सप्तमे गुप्तविज्ञानं परा वाणी तथाष्टमे ॥४४॥

तथा पंचम नादमें गलेमें तालुसें थोडाथोडा अमृतका स्राव होने लगता है और अष्टम नादमें स्पष्टरूपसें जिह्वापर अमृतका मधुर मधुर स्वाद आनेलगताहै तथा सप्तम नादमें सर्व गुप्त पदार्थों-का ज्ञान होने लगता है और अष्टम नादमें मूलाधा-रचक्रसें परावाचाका उत्थान होवे है इति ॥४४॥

नवमे स्याददृश्यत्वं दिव्यदृष्टिस्तथैव च ।
दशमे निश्चितं योगी परे ब्रह्मणि लीयते ॥४५॥

तथा नवमें नादमें योगीको अंतर्धानकी शक्ति और दिव्यदृष्टि होवे है तथा दशमें नादमें योगी निश्चय करके परब्रह्ममें लीन होजाता है इति ॥ ४५ ॥

परे ब्रह्मणि संलीनः परमानंदमूर्च्छितः ।
समाधिस्थो भवेद्राजन् सर्वसंकल्पवर्जितः ४६

और परब्रह्ममें लीन होनेसें परम आनंदमें मग्न भया योगी सर्व बाह्य संकल्पोंसें रहित भया समाधिमें स्थित होजावेहै इति ॥ ४६ ॥

इस प्रकार नाद श्रवणकी विधि निरूपण करके अब खेचरी मुद्राका वर्णन करते हैं ।

खेचरीसाधनं चापि शृणु भूप वदामि ते ।
सर्वमुद्राशिरोरत्नं खेचरी परिकीर्तिता ॥ ४७ ॥

हे भूप! अब मैं तेरेको खेचरीके साधन करनेकीभी विधि कथन करताहूं सो तूं श्रवण कर क्योंकि योगकी सर्व मुद्रायोंमें खेचरीमुद्रा शिरोमणि है अर्थात् सर्व मुद्रायोंसें श्रेष्ठ है इति ॥ ४७ ॥

एकैव खेचरी मुद्रा योगसिद्धिकरी भवेत् ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात्साधनं योगसाधकः ४८

हे राजन्! एकली खेचरीमुद्राहि योगसमाधिकी सिद्धि करनेवाली है योगसाधन करनेवाला

दूसरा कोई साधन करे चाहे नहि करे एकली खेचरीमुद्रासेंहि योगकी सिद्धि होजावेहै इति ॥ ४८ ॥

खेचरी साधिता येन सम्यग्यत्नेन योगिना ।
समाधिः स्यात्स्वभावेन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता

जिस योगीने परिश्रम करके खेचरीमुद्राको भलीप्रकारसे सिद्ध कर लिया है उसकी समाधि सहजमेंहि हो सकती है और मुक्ति उसके हाथमें रहती है अर्थात् मुक्तिभी सहजमेंहि हो सकती है इति ॥ ४९ ॥

जिह्वाधोनाडिकां छित्त्वा क्रमाद्रूप शनैःशनैः ।
चालनाद्दोहनान्नित्यं जिह्वां संवर्द्धयेत्सुधीः ५०

बुद्धिमान् अभ्यासी पुरुषको चहिये कि प्रथम जिह्वाके नीचेकी नाडीको सूक्ष्म शस्त्रसें धीरे धीरे थोडीथोडी काटे और उसके ऊपर हरड और सैंधव निमकका चूर्ण लगाता जावे जब जिह्वाकी नाडी दो तीन मासमें ठीक ठीक कट-जावे तो पीछे दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसें जिह्वाको

पकडकर प्रातःकाल तथा सायंकाल दोहन और चालन करता रहे जिससें कि जिह्वा लंबी होजावे इति ॥ ५० ॥

नासिकाग्रं स्पृशेद्यावत्तावज्जिह्वां प्रवर्द्धयेत् ।
ततस्तात्वूर्ध्वरंध्रे तामंगुल्या संप्रवेशयेत् ॥५१॥

जबतक सो जिह्वा लंबी होकर बाहिरसें नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करने लगजावे तब-तक जिह्वाको बढाते रहना चहिये उसके पीछे दहने हाथकी दो अंगुलियोंसें जिह्वाको उलटी दबाकरके पीछेकी तरफ तालुके ऊपर गलेके छिद्रमें प्रवेश करे इति ॥ ५१ ॥

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।
चित्तवृत्तिर्भ्रुवोर्मध्ये मुद्रा भवति खेचरी ॥५२॥

जिह्वाको गलेके छिद्रमें उलटी करके लगा-नेसें और चित्तकी वृत्तिको भ्रूमध्यमें लगानेसें खेचरीमुद्रा पूरी होतीहै ऐसा जानना चहिये इति ॥ ५२ ॥

अब खेचरीमुद्राका फल कथन करते हैं ।

खेचर्यभ्यासतोऽप्यादौ गात्राणां भंजनं भवेत् ।
शिरसः कंपनं पश्चात्सर्वदेहस्य कंपनम् ५३

खेचरी मुद्राके अभ्यास करनेसेंभी नादश्रवणकी न्यांई प्रथम योगीके शरीरके सर्व अंगोंमें फूटन होती है और तिसके पीछे सिर कांपने लगता है तथा पीछे कवीकवी सारी देह कांपने लगती है इति ॥ ५३ ॥

अमृतास्वादनं पश्चाज्जिह्वाग्रे संप्रवर्त्तते ।
योगनिद्रा भवेत्पश्चादभ्यासेन शनैःशनैः ५४

तिसके पीछे जिह्वाके अग्रभागमें अमृतका स्वाद आने लगता है और फिर तिसके पीछे वहुत कालपर्यंत अभ्यास करनेसे धीरेधीरे योगनिद्रा होने लगती है अर्थात् योगीको वेहोशी होने लगती है इति ॥ ५४ ॥

दिव्यदृष्टिप्रकाशश्च ततः समुपजायते ।
योगनिद्राप्रभावेण येन विश्वं प्रपश्यति ॥५५॥

तिसके पीछे योगनिद्राके प्रभावसें योगीको

दिव्य दृष्टिका प्रकाश होता है जिससें योगी सर्व जगत्को ध्यानमें वैठाहुया देखता है इति ॥५५॥

ततोऽधिकतराभ्यासाद्भवेत्प्राणस्य मूर्च्छनम् ।
नैरोग्यं कोमलत्वं च तेन देहे प्रजायते ॥५६॥

फिर खेचरी मुद्राके विशेष अभ्यास होनेसें वहुत कालके अनंतर प्राणका मूर्च्छन होवे है अर्थात् योगीका प्राण अत्यंत धीमा पडजाता है पेटमें धीरेधीरे सूक्ष्म रीतिसें चलता है और प्राणके मूर्च्छन होनेसें योगीके शरीरमें निरोगता और सर्व अंगोंमें कोमलता होवे है इति ॥ ५६ ॥

मूर्च्छनानंतरं राजन् सम्यगभ्यासपाकतः ।
कालेन म्रियते प्राणः स्थितो देहेपि योगिनः ॥

हे राजन्! प्राणके मूर्च्छन होनेके अनंतर फिर भलीप्रकार दीर्घकालपर्यंत खेचरी मुद्राका अभ्यास करनेसें प्राणका मरण होवे है अर्थात् योगीके शरीरमें स्थित हुया प्राण चलता हुया प्रतीत नहि होता है अत्यंत सूक्ष्म गतिसें पेटमें थोडा-थोडा चलता है मुख और नासिकासे चलताहुया प्रतीत नहि होता है इति ॥ ५७ ॥

मृते प्राणे महाराज समाधिः स्यात्स्वभावतः ।
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्वापि योगी भवति निश्चलः ॥

हे महाराज! प्राणके मरणके पीछे योगीकी सहजमेंहि समाधि हो जातीहै अर्थात् योगी जव चाहे तवी खेचरी लगाकर वैठनेसें निर्विकल्प हो जाताहै तथा विना समाधिकेभी चलता फिरता वैठा वा सोताहुया सर्वदाकाल समाहितचित्तहि रहता है इति ॥ ५८ ॥

क्षुधा निद्रा तथा व्याधिर्बाधते न कदाचन ।
जराभावविनिर्मुक्तश्चिरं जीवति भूतले ॥५९॥

तथा खेचरीके अभ्यासवालेको क्षुधा निद्रा और रोग कवी सताते नहिहैं साधारण रीतिसें होते हैं और उसके शरीरमें विशेष करके जलदी वृद्धावस्थाभी नहि होती तथा सो चिरकालपर्यंत पृथिवीमें जीतारहताहै अर्थात् उसकी उमरा वडी होजाती है इति ॥ ५९ ॥

यदा वाञ्छति कैवल्यं जीर्णां त्वचमिवोरगः ।
त्यक्त्वा देहमिमं योगी परे ब्रह्मणि लीयते ६०

और जब योगीकी कैवल्यमोक्षपदको प्राप्त होनेकी इच्छा होवे तो जैसे सर्प अनायाससें अपनी पुराणी त्वचाको छोड देता है तैसेहि योगी शरीरको परित्याग करके परब्रह्ममें लीन होजाता है इति ॥ ६० ॥

इति ते योगसर्वस्वं कथितं नृपसत्तम ।
श्रवणात्सर्वपापघ्नं सेवनान्मोक्षदं परम् ॥६१॥

हे नृपसत्तम सर्व राजायोंमें श्रेष्ठ राजन् ! मैंने तेरेको यह योगका संपूर्ण रहस्य कथन किया है इसके श्रवण करनेसें सर्व पापोंका नाश होवे है और भलीप्रकार अभ्यास करनेसें मोक्षपदकी प्राप्ति होवे है इति ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां राजयोगसाधनविधाननिरूपणं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

भगवंस्त्वन्मुखादेतद्योगसाधनमुत्तमम् ।
श्रुत्वा परमसंतोषं गतोहं मुनिनायक ॥ १ ॥

राजा बोले हे मुनिनायक सर्वमुनियोंमें श्रेष्ठ भगवन्! मैं आपके मुखसें इस उत्तम योगसाधनके प्रकारको श्रवण करके परम संतोषको प्राप्त हुया हूं इति ॥ १ ॥

योगसाधनवत्सांख्यं प्रशंसंति मनीषिणः ।
सांख्यज्ञानमतस्त्वत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं पुनः २

योगसाधनकी न्यांई श्रेष्ठ बुद्धिमान् लोक सांख्यज्ञानकीभी बडीभारी प्रशंसा करते हैं इसलिये अब मैं आपके मुखारविंदसें सांख्यज्ञानकोभी श्रवण करना चाहताहूं सो कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ २ ॥

सांख्ये योगे च को भेदः कथितो मुंनिपुंगवैः ।
फलं द्वयोः पृथग्वैकं ब्रूहि मे करुणानिधे ॥ ३ ॥

तथा हे करुणाके सागर भगवन्! साख्य और योगमें श्रेष्ठ मुनिलोकोंने कितना भेद कथन किया है अर्थात् सांख्य और योगमें कितना भेद है तथा तिन दोनोंका फल क्या भिन्नभिन्न होवे है किंवा एकहि प्रकारका होवे है सो कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ ३ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

राजन्सांख्यस्य योगस्य लक्ष्यमेकमुदाहृतम् ।
योगेन गम्यते कैश्चित्कैश्चित्सांख्येन गम्यते ४

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन्! सांख्य और योग इन दोनोंका लक्ष्य स्थान एकहि है भिन्न नहि है सो कोई लोक तो योगसें उस लक्ष्यको प्राप्त होते हैं और कोई लोक सांख्यसे प्राप्त होते हैं इति ॥४॥

योगं क्रियामयं विद्धि सांख्यं ज्ञानमयं तथा ।
क्रियया जायते ज्ञानं ज्ञानाद्भूप क्रियाजनिः ५

हे भूप ! योगको तूं क्रियारूप जान और सांख्यको ज्ञानमय जान सो क्रियासें अनुभव-रूप ज्ञानकी उत्पत्ति होवेहै और ज्ञानसें प्रवृत्ति-

रूप क्रियाकी उत्पत्ति होवे है यह दोनों परस्पर उपयोगी हैं इति ॥ ५ ॥

मम त्वत्र मतं राजन्द्वयमेव समभ्यसेत् ।
सांख्यज्ञानं च योगश्च मिलित्वा भेषजं परम् ६

हे राजन् ! इस बाबतमें मेरा तो यह मत है कि दोनोंका साथहि अभ्यास करना चहिये क्यों कि सांख्यज्ञान और योग यह दोनों मिलनेसें संसाररूप रोगके निवृत्त करनेमें परम उत्तम औषधरूप होते हैं अर्थात् जैसे उत्तम औषध रोगको दूर करदेती है तैसेहि यह दोनों मिले हुये संसारबंधनको नाश करदेतेहैं इति ॥ ६ ॥

यथा क्रिया च ज्ञानं च द्वयं सर्वत्र कार्यकृत् ।
तथा सांख्यं च योगश्च मोक्षकारणमुत्तमम्॥७॥

सो जैसे क्रिया और ज्ञान दोनोंके मिलनेसें सर्व जगत्के कार्य ठीक होते हैं तैसेहि सांख्य और योग दोनोंके मिलनेसें मोक्षका उत्तम साधन होवे है इति ॥ ७ ॥

उभाभ्यां च यथा पक्षी पक्षाभ्यां पृथिवीपते ।
सम्यगाकाशमारोहेत्तथैवात्र निदर्शनम् ॥८॥

तथा हे पृथिवीपते ! जैसे दोनों पक्षोंसें पक्षी आकाशमें भली प्रकारसें उड सकताहै तैसेहि यहां मोक्षविषयमेंभी सांख्य और योगकी बाबतमें दृष्टांत समझलेना चहिये इति ॥ ८ ॥

एतावांस्तु विशेषोत्र योगिनां दृश्यते नृप ।
यदेच्छंति विमुच्यंते सांख्याः कर्मक्षये पुनः ९

हे नृप ! केवल सांख्यज्ञानियोंमें और योगियोंमें इतना हि फरक देखनेमें आताहै कि योगीलोक तो जब चाहतेहैं उसीकालमें शरीरको छोडकरके मोक्षको प्राप्त होजाते हैं और सांख्यज्ञानी प्रारब्धकर्मके क्षय होनेके पीछे मोक्षको प्राप्त होते हैं इति ॥ ९ ॥

सांख्येपि योगकृत्यं स्याद्योगे सांख्यमपेक्ष्यते ।
परस्परोपकारित्वादुभयं भज भूपते ॥ १० ॥

किंच हे भूपते ! सांख्यज्ञानमेंभी भूमिका आरूढ होनेके लिये योगाभ्यासकी आवश्यकता होतीहै तथा योगाभ्यासमेंभी ब्रह्मस्वरूप जान-

नेके लिये सांख्यज्ञानकी आवश्यकता होती है इसलिये सांख्यज्ञान और योग दोनों परस्पर उपयोगी होनेसें हे राजन्! तूं दोनोंकाहि अभ्यास कर इति ॥ १० ॥

योगाभ्यासस्तु संप्रोक्तः सांगोपांगविधानतः ।
अधुना सांख्यविज्ञानं शृणु भूप मयोदितम् ११

हे भूप ! तिनमें योगाभ्यासकी विधि तो तेरेको मैंने पिछले दो अध्यायोंमें भली प्रकारसें सर्व अंगोंके सहित कथन करी है अब मैं सांख्य-ज्ञानका निरूपण करताहूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ ११ ॥

तहां प्रथम सांख्यपदका अर्थ दिखलाते हैं ।

संख्यायंते गुणा यत्र तत्त्वान्यपि विभागशः ।
तत्सांख्यं प्रोच्यते ज्ञानं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः

जिसमें सर्व गुणोंकी और तत्त्वोंकी भिन्न-भिन्न गिनती कीजातीहै तिसको तत्त्वदर्शी मुनि-लोक सांख्यज्ञान कहते हैं इति ॥ १२ ॥

यथा क्षीरगतं सर्पिर्मंथनात्क्रियते पृथक् ।
तथा सांख्येन तत्त्वेभ्यः पुरुषः पृथगीक्ष्यते १३

सो जैसे दूधमें मिलाहुआ घृत मंथन करनेसें पृथक् हो जाताहै तैसेहि सांख्यज्ञानसेंभी दूसरे सर्व तत्त्वोसें पुरुष भिन्नकरके जानाजावे है इति ॥ १३ ॥

पंचविंशतितत्त्वानि सांख्ये प्रोक्तानि सूरिभिः ।
तेषां नामानि शृण्वत्र समुत्पत्तिं च भूपते १४

हे भूपते ! सांख्यमतमें पचीस तत्त्व कपिल-आदि महर्षिलोकोंने माने हैं सो तिनके भिन्न-भिन्न नाम और उत्पत्ति मैं तेरेको कहताहूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ १४ ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चैते गुणा भूप सनातनाः ।
तेषां समुच्चयः प्रोक्ता प्रकृतिर्विश्वकारणम् १५

हे भूप! सत्त्व रज तम यह तीन गुण अनादि हैं इन तीनोंकी जो तुल्यरूपसें एकता है उसको प्रकृति कहते हैं अर्थात् सत्त्व रज तम त्रिगुण-मयी प्रकृति है इति ॥ १५ ॥

प्रकृतेस्तु महांस्तस्मादहंकारः प्रजायते ।
तस्माद्दशेन्द्रियाण्येकं मनस्तन्मात्रपंचकम् १६

तिस प्रकृतिसें प्रथम महत्तत्त्व (समष्टिबुद्धि) उत्पन्न होवेहै और फिर महत्तत्त्वसें अहंकार (समष्टि अहंकार) उत्पन्न होवे है तथा तिस अहंकारसें पांच ज्ञानइन्द्रिय पांच कर्मइन्द्रिय एक मन और पांच तन्मात्रा (शब्द तन्मात्रा स्पर्श तन्मात्रा रूप तन्मात्रा रस तन्मात्रा गंध तन्मात्रा) यह सोलां तत्त्व उत्पन्न होते हैं इति। पीछे ग्यारवें अध्यायमें इन सोलां तत्त्वोंकी पंच॰ महाभूतोंसें उत्पत्ति कथन करी है परंतु यहां सांख्य॰ मतके अनुसार लिखी है सो जान लेना ॥ १६ ॥

तन्मात्रेभ्यश्च जायंते पंच भूतानि भूपते ।
आकाशादीनि तेभ्यश्च स्थूलं स्यान्निखिलं जगत्

फिर पांच तन्मात्रायोंसें आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी यह पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं और तिन पंचमहाभूतोंसे यह संपूर्ण स्थूल जगत् उत्पन्न होता है इति ॥ १७ ॥

चतुर्विंशतितत्त्वानि भवंत्येवं महीपते ।
प्राणोऽन्तःकरणाभिन्नः पुरुषः पंचविंशकः १८

इस प्रकार चौवीस तत्त्व होते हैं अर्थात् प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार पांच ज्ञानइन्द्रिय पांच कर्मइन्द्रिय एक मन पांच तन्मात्रा पांच महाभूत सब मिलकर चौवीस होतेहैं और पचीसवां इनमें मिला हुया चेतनात्मा पुरुष है इस प्रकार यह पचीस तत्त्व होते हैं सांख्यमतमें प्राण और अंतःकरण भिन्न नहि हैं क्योंकि समाधिमें मनके रुकनेसें प्राण रुकजाते हैं और प्राणोंके रुकनेसें मन रुकजाता है इस लिये प्राणोंकी जुदा गिनती नहि करी है सो जानलेना इति ॥ १८ ॥

पुरुषः प्रकृतिश्चेति मुख्यं तत्त्वद्वयं मतम् ।
प्रकृतेरन्यतत्त्वानि प्रभवंति यतो नृप ॥ १९ ॥

हे नृप ! महत्तत्त्व आदि दूसरे तेईस तत्त्व प्रकृतिसेंहि उत्पन्न होते हैं इसलिये सो एक प्रकृतिरूपहि समझे जाते हैं सो एक प्रकृति और दूसरा पुरुष यह दो तत्त्वहि सांख्यशास्त्रमें मुख्य माने हैं इति ॥ १९ ॥

अब तिन दोनोंके लक्षण कथन करते हैं ।

पुरुषश्चेतनोऽनादिरसंगोऽप्रसवस्तथा ।
अव्यक्तोऽपरिणामी च भोक्ता नित्यो नियामकः

तिनमें पुरुष चेतन अनादि असंग प्रसवधर्मसें रहित अव्यक्त अपरिणामी भोक्ता नित्य और नियामक है इति ॥ २० ॥

प्रकृतिश्चाप्यनादिः स्यादव्यक्ता परिणामिनी ।
पराश्रया च भोग्या च नित्या प्रसवधर्मिणी २१

तथा प्रकृति अनादि अव्यक्त परिणामिनी पराधीन भोग्यरूप नित्य और प्रसवधर्मवाली है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ११ ॥

स्वामिनः कार्यसिद्ध्यर्थं यथा स्त्री संप्रवर्त्तते ।
तथैव पुरुषस्यार्थं प्रकृतेश्चेष्टनं विदुः ॥ २२ ॥

सो जैसे स्त्री अपने पतिके प्रयोजनके लिये घरमें रसोई आदि कार्यांमें प्रवृत्त होती है तैसेहि प्रकृतिकी पुरुषके भोग और मोक्षके लियेहि सबी चेष्टा होती है इति ॥ २२ ॥

रजस्तमोभ्यां भोगः स्यात्सत्त्वान्मोक्षःप्रजायते।
पुरुषस्य महीपाल प्रकृतेरेव कारणात् ॥ २३ ॥

हे महीपाल! रजो और तमोगुणसें तो पुरुषको संसारका भोग होता है और सत्त्वगुणसे मोक्षकी प्राप्ति होतीहै इसप्रकारसे प्रकृतिके गुणोसेंहि पुरुषको भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है इति॥२३॥

यावन्नोपरतिः पुंसो भवेद्भोगेषु भूपते ।
प्रकृतिस्तावदेवैनं निबध्नाति न संशयः ॥२४॥

हे भूपते ! जबतक संसारके भोगोंसे पुरुषको वैराग्य उत्पन्न नहि होता है तबतकहि तिसको प्रकृति बंधन करती है इसमें संशय नहि है इति ॥ २४ ॥

दोषदृष्ट्या यदा चासौ भोगेभ्यस्तु विरज्यते ।
तदा तं मोक्षयत्याशु पुरुषं प्रकृतिर्नृप ॥ २५ ॥

और हे नृप ! जब यह पुरुष संसारके भोगोंमें दोष देखकर तिनसें वैराग्यको प्राप्त होता है तो तिस कालमें तिस पुरुषको प्रकृति शीघ्रहि मुक्त करदेतीहै इति ॥ २५ ॥

यथा नटः सरागं हि नाट्यं दर्शयते नरम् ।
विरक्तं वर्जयेत्तद्वत्प्रकृतेश्चेष्टनं विदुः ॥ २६ ॥

जैसे खेल करनेवाला नट तवतकहि अपना खेल दिखाता है जवतक लोक उसको प्रेमसे देखते हैं और जव वो लोक खेल देखनेसें उपराम हो जाते हैं तो फिर वो नट अपना सव खेल समेट लेता है तैसेहि प्रकृतिभी जवतक पुरुषको विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न नहि होता है तबीतक उसको संसारका खेल दिखलातीहै वैराग्य होनेपर फिर नहि दिखलाती अर्थात् फिर पुरुषकी मोक्ष होजातीहै इति ॥ २६ ॥

यस्मात्परमवैराग्यं प्रोक्तं मोक्षस्य कारणम् ।
तस्माद्रागं परित्यज्य सांख्यज्ञानपरो भव २७

हे राजन् ! जिसलिये सांख्यमतमें परम वैराग्यहि मोक्षका मुख्य कारण कथन कियाहै तो तूंभी संसारके सर्व भोगोंका राग छोडकर सांख्यज्ञानके विचारमें तत्पर होहु इति ॥ २७ ॥

अब तिस विचारका स्वरूप निरूपण करतेहैं।

देहेन्द्रियादिसंघातं कार्यत्वात्प्रकृतेर्नृप ।
जानीहि प्रकृते रूपं पुरुषं तु विलक्षणम् ॥२८॥

हे नृप! देह इन्द्रिय और विषय आदिका सर्व समूह प्रकृतिका कार्य होनेसें प्रकृतिरूपहि समझना चहिये और पुरुषको तिस प्रकृतिसें विलक्षण भिन्न समझना चहिये इति ॥ २८ ॥

शरीरस्येन्द्रियाणां च मनसश्च विचेष्टनम् ।
सर्वं पुरुषहेतोः स्यात्पुरुषो न तदर्थकृत् ॥२९॥

शरीरकी और सब इन्द्रियोंकी तथा मनकी संपूर्ण चेष्टा केवल पुरुषके कार्यके लिये होती है परंतु पुरुष उनके कार्यके लिये नहि है अर्थात् पुरुष स्वतंत्र भोक्ता है इति ॥ २९ ॥

यथाऽयस्कांतयोगेन क्रिया लोहे प्रवर्त्तते ।
तद्वत्पुरुषसंबंधाद्देहादीनां क्रिया भवेत् ॥३०॥

जैसे लोहचुंबकके संबंधसें लोहेमें क्रिया उत्पन्न होजातीहै तैसेहि चेतनपुरुषके संबंधसें शरीर इन्द्रिय और मनकी सर्व क्रिया होतीहै इति॥३०॥

पुरुषं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च ।
इन्द्रियाण्यश्वरूपाणि मनश्चैव तु सारथिम् ३१

विषयाः पंच मार्गाः स्युः संसारो नगरं महत् ।
कुशलः क्षेमतो याति श्वभ्रेष्वन्यः पतत्यधः ३२

हे राजन् ! पुरुष तो रथका स्वामी है और स्थूल-शरीररूप रथ है और सब इन्द्रियांरूप घोडे हैं और मनरूप हाकनेवाला सारथि है और शब्द स्पर्श आदि पांच विषयरूप मार्ग हैं तथा संसाररूप बडा नगर है सो तिसमें ज्ञानवान् पुरुष तो सुखपूर्वक मोक्षरूप अपने स्थानमें पहुंचजाताहै और अज्ञानी जीव नरकआदिरूप खड्डे खोचरोंमें पडकर महाक्लेशको प्राप्त होताहै इति ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

एवं देहादितो भिन्नमसंगं पुरुषं सुधीः ।
ज्ञात्वा विमुच्यते राजञ्जन्मसंसारबंधनात् ३३

हे राजन् ! विवेकवान् पुरुष इसप्रकारसें पुरुषको देह इन्द्रिय विषय और मनसें भिन्न तथा असंग जान करके जन्ममरणरूप संसारबंधनसें मुक्त होजाताहै इति ॥ ३३ ॥

नास्ति विद्यासमं नेत्रं नास्ति सत्यसमं तपः ।
नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम्॥

हे राजन् ! विद्याके समान जगत्में दूसरा कोई नेत्र नहि है और सत्यके समान दूसरा कोई तप नहि है और सांख्यके समान दूसरा कोई ज्ञान नहि है तथा योगके समान दूसरा कोई बल नहि है ऐसा समझना चहिये इति ॥ ३४ ॥

इति ब्रह्मानंदगीतायां सांख्यज्ञाननिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥
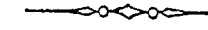
सप्तदशोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

सांख्यज्ञाने च वेदांते को भेदोस्ति महामुने ।
एतदप्यत्र मे ब्रूहि कृपया ज्ञानवृद्धये ॥ १ ॥

राजा बोले हे महामुने ! सांख्यज्ञान और वेदांतमें कितना भेद है सो पूर्ण तत्त्वज्ञान होनेके लिये यहभी यहां कृपाकरके मेरेको कथन करो इति ॥ १ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

सांख्यस्यैव विशेषो हि वेदांतः परिकीर्तितः ।
तस्यापि वर्णयामीमं सिद्धांतं शृणु भूपते ॥२॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे भूपते ! सांख्यज्ञानकाहि एक भाग वेदांत है सो तिसकाभी सिद्धांत मैं तेरेको कथन करताहूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ २ ॥

राजन्वेदांतसिद्धांते मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
जीवेश्वरविभागेन द्विविधः पुरुषो मतः ॥ ३ ॥

हे राजन्! वेदांतके सिद्धांतमें व्यास वसिष्ठ आदि तत्त्वदर्शी मुनिलोकोंने जीव और ईश्वर इसभेदसें दो प्रकारका पुरुष माना है इति ॥३॥

तत्रेश्वरस्तु सर्वज्ञः सर्वशक्तिसमन्वितः ।
अंतर्यामी च विश्वस्य कर्ताऽसंगः समीरितः ४

तिनमें ईश्वर तो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् अंतर्यामी सर्व जगत्का कर्ता और असंग है इति ॥ ४ ॥

जीवोऽल्पज्ञोऽल्पशक्तिश्च कर्माधीनः शरीरगः ।
मायया वेष्टितः क्षुद्रो भोगतृष्णान्वितः सदा५

और जीव अल्पज्ञ अल्पशक्तिवाला कर्मोंके अधीन शरीरमात्रमें रहनेवाला मायाकरके मोहित तुच्छरूप और सदा भोगोंकी तृष्णाकरके युक्त है इति ॥ ५ ॥

ईश्वरो नित्यमुक्तत्वात्सदानंदस्वरूपकः ।
जीवस्तु कर्मभिर्बद्धः संसारे परिभ्राम्यति ॥६॥

तथा ईश्वर तो नित्यमुक्तस्वरूप होनेसें सर्वदाकाल आनंदस्वरूप है और जीव शुभाशुभ कर्मोंकरके बंधायमान हुया संसारचक्रमें भ्रमता रहता है इति ॥ ६ ॥

तस्य मुक्तिर्भवेद्राजन्नीश्वरस्य प्रसादतः ।
ब्रह्मज्ञानेन पूर्णेन द्वारा युक्तस्य साधनैः ॥७॥

हे राजन् ! तिस जीवकी मुक्ति ईश्वरकी कृपासें विवेक वैराग्य आदि साधनोंकरके युक्त होनेसें पूर्ण ब्रह्मज्ञानके द्वारा होवे है अर्थात् ईश्वरकी कृपासें ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होवेहै और फिर ब्रह्मज्ञानसें मुक्तिकी प्राप्ति होवे है इति ॥७॥

राजोवाच ।

ब्रह्मणः कीदृशं ज्ञानं किंच ब्रह्म समीरितम् ।
सर्वब्रह्मविदां श्रेष्ठ वक्तुमर्हसि मेऽधुना ॥ ८ ॥

राजा बोले हे सर्व ब्रह्मवेत्तायोंमें श्रेष्ठ भगवन् ! आपने कहा कि ब्रह्मज्ञानसें मुक्ति होवेहै सो ब्रह्मका ज्ञान कैसा है और ब्रह्म किसको कहते हैं सो कृपा करके मेरेको अब कथन करो इति ॥ ८ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

योगा यदीश्वरं प्राहुः सांख्या यत्पुरुषं परम् ।
तदेव पूर्णं चैतन्यं वेदांते ब्रह्म गीयते ॥ ९ ॥

हे राजन् ! जिसको योगमतवाले ईश्वर कहते हैं और जिसको सांख्यवाले प्रकृतिसें परे पुरुष कहतेहैं सोई सर्वव्यापक चैतन्यस्वरूप वेदांतसिद्धांतमें ब्रह्म कहलाता है इति ॥ ९ ॥

नित्यत्वात्सत्तदेवोक्तमानंदः सुखरूपतः ।
सच्चिदानंदमित्येवं विद्धि ब्रह्म सनातनम् १०

तथा हे राजन्! सोई चैतन्य नित्य अविनाशी होनेसें सत् कहलाता है तथा सर्वदाकाल सुखरूप होनेसें आनंद कहिये है इस रीतिसें सत् चित् आनंद स्वरूप तूं ब्रह्मको जान इति ॥१०॥

यदा जीवः परित्यज्य जीवेश्वरभिदाभ्रमम्।
एकं ब्रह्म विजानाति ब्रह्मज्ञानं तदुच्यते॥११॥

और जिस कालमें यह मुमुक्षु पुरुष जीव और ईश्वरके भेदभावको छोडकर एक ब्रह्मस्वरूपको भलीप्रकारसें जानकर निश्चय करलेताहै उसको ब्रह्मज्ञान कहतेहैं इति ॥ ११ ॥

राजोवाच ।

प्रत्यक्षं विद्यमाने तु भेदे जीवेशयोर्विभो ।
जगतश्चैकरूपत्वं ज्ञायते ब्रह्मणः कथम् ॥ १२ ॥

राजा बोले हे विभो ! जीव और ईश्वर तथा जगत्का परस्पर प्रत्यक्षहि अनुभवमें भेद प्रतीत होताहै तो फिर एक अद्वितीय ब्रह्मका ज्ञान कैसे होसकताहै यह वार्ता मेरेप्रति कृपा करके कथन करो इति ॥ १२ ।

ब्रह्मानंद उवाच ।

ब्रह्मैव सृष्टिकर्तृत्वादीश्वरः परिकीर्त्यते ।
भोक्तृभावाच्च जीवत्वं तस्यैवांशेन जायते १३

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन् ! ब्रह्महि सृष्टिकर्तापणेके कारणसें ईश्वर कहाजाताहै और सोई ब्रह्म भोक्तापणेके कारणसें अंशरूपसें जीव कहलाता है इति ॥ १३ ॥

यथांशस्यांशितो नैव भेदो भवति रूपतः ।
तद्वद्ब्रह्मस्वरूपत्वं जीवस्योक्तं मनीषिभिः १४

सो जैसे अंशीस्वरूपसें उसकी अंशका असलीरूपसें कुछ भेद नहि होता है अर्थात् अंशीके तुल्यही अंशका रूप होताहै तैसेहि व्यास वसिष्ठ आदि बुद्धिमान् महर्षिलोकोंने जीवको ब्रह्मस्वरूपपणा कथन किया है अर्थात् ब्रह्मका अंश होनेमें जीवभी ब्रह्मस्वरूपहि है इति ॥ १४ ॥

यथादित्यस्य दीपस्य व्यक्तिभेदेपि पार्थिव ।
अग्नितत्त्वमयत्वेन द्वयोरेकस्वरूपता ॥ १५ ॥

हे पार्थिव पृथिवीपति राजन् ! जैसे सूर्यमंड-

लका और दीपकका आपुसमें वडेछोटे आकारका भेद होनेपरभी अग्नितत्त्वरूपसे दोनों एकस्वरूप होते हैं तैसेहि जीवब्रह्मकी एकताबाबतभी समझलेना चहिये इति ॥ १५ ॥

यथा चाब्धेश्च विंदोश्च परिमाणेऽन्यता भवेत् ।
न स्वरूपे तथैवात्र दृष्टांतं विद्धि भूपते ॥ १६ ॥

तथा हे भूपते! जैसे समुद्रमें और जलकी बूंदमें वडेछोटे परिमाणमें फरक होनेपरभी दोनोंके जलरूपपणेमें कुछ फरक नहि है तैसेहि यहां जीवब्रह्मकी एकतामें भी दृष्टांत समझलेना चहिये इति ॥ १६ ॥

एवं जीवस्य ब्रह्मत्वं सर्वदेहेषु तत्समम् ।
बुद्धा भेदं परित्यज्य ब्रह्मैकं परिभावयेत् १७

हे राजन्! इस रीतिसें जीवको ब्रह्मरूप जानकरके और तैसेहि सर्व चराचर जीवोंके शरीरोंमें तिसको वरावर व्यापक समझकर सर्व भेदभावको छोडकर विवेकी पुरुष सर्वत्र एक

ब्रह्मकी भावना करे अर्थात् सर्व जीवोंको ब्रह्मकी अंश होनेसें ब्रह्मरूपहि जाने इति ॥ १७ ॥

यथा घटेषु सर्वेषु नाकाशस्यान्यरूपता ।
तथा सर्वशरीरेषु ब्रह्मैकं परिभावयेत् ॥ १८ ॥

तथा जैसे सर्व घटोंमें आकाश एकरूपहि पूर्ण होवेहै तैसेहि देवता दैत्य मनुष्य पशु पक्षी आदि सर्व शरीरोंमें एक ब्रह्मकी भावना करनी चहिये इति ॥ १८ ॥

यथा सर्वत्र दीपेषु वह्निरेकोऽवगम्यते ।
तद्वत्सर्वशरीरेषु ब्रह्मैकं परिभावयेत् ॥ १९ ॥

यथा जैसे सर्व जलतेहुये दीपकोंमें एकहि अग्नि व्यापक देखनेमें आवेहै तैसेहि सर्व जीवोंके शरीरोंमें एक ब्रह्मकी भावना करनी चहिये इति ॥ १९ ॥

इसप्रकार जीवब्रह्मकी एकताका निरूपण करके अब जगत् और ब्रह्मकी एकताका वर्णन करते हैं ।

जगतश्चापि ब्रह्मत्वं तज्जातत्वान्निरूपितम् ।
यद्यतो जायते राजंस्तत्ततो न पृथग्भवेत् २०

तथा हे राजन् ! तैसेहि यह संपूर्ण जगत् ब्रह्मसे उत्पन्न होता है इसलिये वेदांतशास्त्रमें इसकोभी ब्रह्मरूप कथन किया है क्योंकि जो वस्तु जिस कारणवस्तुसें उत्पन्न होतीहै वो उसीका स्वरूप होतीहै उससें जुदा नहि होतीहै इति ॥ २० ॥

यथा कार्पासतो भूप पटः संजायते क्रमात् ।
कार्पासान्न पृथक्कापि तथा ब्रह्ममयं जगत् २१

हे भूप ! जैसे कपाससें तंतुआदि क्रमसें वस्त्र बनता है सो कपाससें कबी भिन्न नहि होता अर्थात् कपासरूप हि होताहै तैसेहि इस जगत्को ब्रह्मसें उत्पन्न होनेसें ब्रह्मरूपहि जानना चहिये इति ॥ २१ ॥

यथा मृदः प्रजातो हि घटो भवति मृन्मयः ।
जगतो ब्रह्मरूपत्वं तद्वदेव नराधिप ॥ २२ ॥

तथा हे नराधिप ! जैसे मिट्टीसें उत्पन्न भया

घट मिट्टीरूपहि होताहै तैसेहि जगत्भी ब्रह्मरू-
पहि है ऐसा निश्चय करना चहिये इति ॥ २२ ॥

राजोवाच ।

सच्चिदानंदरूपत्वं ब्रह्मणः परिकीर्तितम् ।
कथं तस्माज्जडस्यास्य जगतः स्यात्समुद्भवः २३
तथा कार्यं भवेन्नूनं यादृशं तस्य कारणम् ।
कथं न चेतनात्मत्वं जगतः केवलं विभो ॥२४॥

राजा बोले हे भगवन्! ब्रह्मका स्वरूप तो
पीछे आपने सच्चिदानंद कथन किया है तो
तिस चेतनस्वरूप ब्रह्मसें यह जडरूप जगत् कैसे
उत्पन्न होवेहै क्योंकि जिस वस्तुका जैसा कारण
होता है वो वस्तु उसीजैसी होती है सो जगत्
जो ब्रह्मसें उत्पन्न हुयाहै तो फिर यह सारा चेत-
नरूप क्यों नहि है सो हे विभो! कृपाकरके इस
प्रश्नका उत्तर मेरेको कथन करो इति ॥२३॥२४॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

कारणानुगतं कार्यं भवतीति विनिश्चितम् ।
स्वरूपतुल्यतायास्तु नियमो नास्ति भूपते २५

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन् ! कारण करके कार्य व्याप्त तो होता है ऐसा नियम है परंतु कारणके बराबर कार्यका आकार होनेका नियम नहि है अर्थात् कार्य किसी अंशमें कारणके तुल्यभी होताहै और किसी अंशमें विलक्षणभी होताहै इति ॥ २५ ॥

तृणपत्राशनाद्गावो महिष्यश्च निरंतरम् ।
पयः क्षरंति सुस्निग्धं नास्ति कारणतुल्यता२६

जैसे गौवां और भैंसे तृण और घास खातीहैं और उससें सुंदर स्निग्ध दूध देतीहैं अर्थात् इसलिये कार्यकी कारणके साथ तुल्यता नहि होतीहै अर्थात् तृण घासका दूसरा आकार है और दूधका दूसरा रूप होताहै इति ॥ २६ ॥

वटबीजं भवेत्सूक्ष्मं वृक्षस्तूत्पद्यते महान् ।
स्वरूपे परिमाणे च नास्ति कारणतुल्यता २७

तथा जैसे वटका बीज अतिसूक्ष्म होताहै और उससें वडा भारी वटका वृक्ष होजाता है सो बीज और वृक्षके स्वरूपमें और परिमाणमें तुल्यता नहि होती है इति ॥ २७ ॥

जलं संजायते वह्नेर्द्रवरूपमधोगति ।
वह्निरुष्णो जलं शीतं नास्ति कारणतुल्यता २८

तथा जैसे जल अग्निसें उत्पन्न होता है सो अग्निकी तो ऊपरको गति है और जलकी नीचे-को गति है तथा अग्नि उष्णस्वभाव है और जल शीतल है इसलिये कारणके साथ कार्यकी तुल्यताका नियम नहि है इति ॥ २८ ॥

एवं ब्रह्मभवस्यास्य सादृश्याभावमात्रतः ।
ब्रह्मणो न पृथक्त्वं स्याज्जगतः पृथिवीपते २९

हे पृथिवीपते ! इसीप्रकार ब्रह्मसें उत्पन्न हुया यह जगत् केवल ब्रह्मके समान नहि प्रतीत होने-मात्रसें ब्रह्मसें भिन्न नहि होसकता है अर्थात् ब्रह्मसें विलक्षण जडरूप प्रतीत होनेपरभी सर्व जगत् ब्रह्मरूपहि समझना चहिये इति ॥ २९ ॥

सादृश्यमपि पश्यंति केचिद्दिव्यविलोचनाः ।
योगिनो ब्रह्मवेत्तारो ब्रह्मणा जगतोऽनिशम् ३०

तथा कोई एक ब्रह्मवेत्ता दिव्यदृष्टिवाले योगी लोक इस जगत्को निरंतर ब्रह्मके समान केवल

चेतनरूपभी देखते हैं ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३० ॥

अब जगत्को चेतनरूप निरूपण करते हैं ।

ब्रह्मसंकल्पतः सर्वं जगदुत्पद्यते यदा ।
तदा संकल्परूपत्वं जगतो नात्र संशयः ॥३१॥

हे राजन् ! जब यह संपूर्ण जगत् ईश्वरके संकल्पसें उत्पन्न होताहै तो यहभी संकल्परूपहि हुया इसमें कुछ संशय नहि है इति ॥ ३१ ॥

संकल्पश्चेतनो यस्माज्जगच्चापि चिदात्मकम् ।
केवलं स्थूलदृष्ट्येदं दृश्यते जडतां गतम् ॥३२॥

सो ईश्वरका संकल्प चेतनस्वरूप है इस लिये यह जगत्भी चेतनस्वरूपहि है केवल अज्ञानी जीवोंको स्थूलदृष्टिसें जडरूप प्रतीत होता है इति ॥ ३२ ॥

जीवानां भोगसिद्ध्यर्थमीश्वरेच्छानुसारतः ।
सर्वतश्चेतनं चापि जडं भाति जगत्सदा ॥३३॥

केवल जीवोंके भोग सिद्ध होनेके लिये ईश्वरकी

इच्छासें यह संपूर्ण जगत् सर्वतरफसें चेतन हुयाभी जीवोंको जडरूप दीखता है और उनके व्यवहारमें आता है इति ॥ ३३ ॥

यथा संकल्पसंभूतैर्नृसिंहस्य कराग्रजैः ।
सत्वरं दैत्यराजस्य वक्षो भूप विदारितम् ३४

हे भूप ! जैसे नरसिंहअवतारमें नरसिंह भगवान्के संकल्पसें उत्पन्न हुये नखोंसें दैत्योंके राजा हिरण्यकशिपुका पेट फटगया था इति ३४

दृढसंकल्पतश्चैवमीश्वरस्य निरंतरम् ।
जडवद्दृश्यते विश्वं सर्वकार्यकरं तथा ॥ ३५ ॥

तैसेहि ईश्वरके दृढ संकल्पसें यह जगत् निरंतर जडरूपकी न्यांई दीखता है और इससें जीवोंके सर्व प्रकारके कार्य होते हैं इति ॥ ३५ ॥

समाध्यभ्यासतो नित्यं सिद्धयोगस्य भूपते ।
योगिनः सततं भाति चिदाकाशमयं जगत् ३६

परंतु निर्विकल्प समाधिके दीर्घकालपर्यंत दृढ अभ्यास करनेसें योगकी पूर्ण सिद्धि होनेसें

योगीको सर्वदाकाल यह जगत् सर्वतरफसें चेतनरूपहि प्रतीत होता है इति ॥ ३६ ॥

गतिर्न रुध्यते तस्य भित्तौ शैले जले स्थले ।
निराकारतया नूनं विश्वस्यास्य निरंतरम् ३७

सो संपूर्ण जगत् निराकारचेतन प्रतीत होनेसें योगीकी गतिका किसी जगा निरोध नहि होताहै अर्थात् दृढ भीतोंमेंसें कठिन पर्वतोंमेंसें गहन जलमेंसें वा पृथिवीमेंसें जहां चाहे योगी लंघन करके चला जाताहै उसको कोई पदार्थ रोक नहि सकता जैसे कि योगवासिष्ठमें चूडाला वा लीला आदिके इतिहासोंमें लिखाहै इति ॥ ३७ ॥

एवं ब्रह्ममयं ज्ञात्वा जगदेतच्चराचरम् ।
सर्वं ब्रह्ममयं पश्येद्विश्वं ब्रह्मपरायणः ॥ ३८ ॥

इस प्रकारसें इस चराचर संपूर्ण जगत्को चेतन ब्रह्मस्वरूप जानकरके ब्रह्ममें तत्पर हुया विवेकी पुरुष संपूर्ण विश्वको निरंतर एक ब्रह्मरूपहि देखताहै इति ॥ ३८ ॥

ब्रह्मज्ञानमिति प्रोक्तं यथार्थत्वेन भूपते ।
अस्यैव परिपाकेन जीवो मुक्तिमवाप्नुयात् ३९

हे भूपते ! यह मैंने तेरेको यथार्थरूपसें ब्रह्मज्ञान कथन किया है सो इसीके परिपक्व निश्चय होनेसें यह जीव संसारवंधनसें मुक्तिको प्राप्त होताहै इति ॥ ३९ ॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र पश्यन्ब्रह्ममयं जगत् ।
वीतरागभयद्वेषो जीवन्मुक्तो भवानघ ॥४०॥

इसलिये हे निष्पाप राजेन्द्र! तूंभी सर्व जगत्को ब्रह्मरूप देखता हुया राग द्वेष भयसें रहित होकर जीता हुयाहि मुक्तरूप होहु इति ४०

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां वेदांतसिद्धांतनिरूपणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

राजोवाच ।

भगवन्किं स्वरूपं स्यान्मुक्तेर्निगमसंमतम् ।
केन चापि प्रकारेण जीवो मुक्तिमुपाश्नुते ॥१॥

राजा बोले हे भगवन् ! आपने कहा कि ब्रह्मज्ञानके परिपक्व होनेसें जीवकी मुक्ति होवे है सो उस मुक्तिका क्या स्वरूप है और जीव किस प्रकारसें मुक्तिको प्राप्त होवेहै सो कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ १ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

मुक्तिस्तु द्विविधा प्रोक्ता राजन्वेदार्थवेदिभिः ।
सगुणा निर्गुणा चैव तयोः शृणु विनिर्णयम् २

ब्रह्मानंदजी बोले हे राजन् ! वेदके अर्थ जाननेवाले ऋषिलोकोंनें मुक्ति दोप्रकारकी कथन करी है एक सगुणा और दूसरी निर्गुणा सो तिन दोनोंका निर्णय मैं तेरेको कहताहूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ २ ॥

सगुणस्येश्वरस्याप्तिर्यया सा सगुणोदिता ।
निर्गुणे लीनता यस्यां सा मुक्तिर्निर्गुणा भवेत् ३

जिस मुक्तिसें सगुण ईश्वरकी प्राप्ति होतीहै सो सगुणा मुक्ति कहिये है और जिस मुक्तिमें ईश्वरके निर्गुणस्वरूपमें एकता होवेहै सो निर्गुणा कहलातीहै इति ॥ ३ ॥

सगुणां केचिदिच्छंति निर्गुणामितरे जनाः ।
तत्राधिकारभेदेन द्वयोः संवरणं वरम् ॥ ४ ॥

तिनमें कोई सकाम उपासकलोक सगुणा मुक्तिको चाहतेहैं और कोई विरक्त ज्ञानी पुरुष निर्गुणाकी वांच्छा करतेहैं सो तहां अधिकारके अनुसार दोनोंका चाहना ठीक है इति ॥ ४ ॥

प्रथमं सगुणायास्तु प्रकारं कथयामि ते ।
वेदोक्तेन क्रमेणात्र शृणु राजन्समाहितः ॥५॥

हे राजन्! तिनमें प्रथम मैं तेरेको सगुणा मुक्तिका प्रकार वेदमें (कौषीतकी उपनिषत्में) कथन करीहुई रीतिके अनुसार कहताहूं सो तूं सावधान होकर श्रवण कर इति ॥ ५ ॥

शमादिगुणसंयुक्तो योऽर्चनं कुरुते हरेः ।
पूर्वोक्तेन विधानेन सततं श्रद्धयान्वितः ॥ ६ ॥
एकेन जन्मना वापि बहुभिर्दोषसंक्षये ।
अधिकारो भवेन्मुक्तौ तस्य पुंसो महीपते ॥७॥

हे महीपते ! जो उपासक पुरुष शम दम आदि गुणोंकरके सहित भया पूर्णश्रद्धाभक्ति और विश्वास करके पीछे नवमे अध्यायमें कथन करी रीतिके अनुसार विष्णु भगवान्‌का निरंतर मानसपूजन ध्यान और जप करके आराधन करता है और जब आराधन करते करते एक जन्ममें वा बहुत जन्मोंमें तिसके सर्व प्रकारके पाप वा दोष नष्ट होजाते हैं तो तिस कालमें तिस पुरुषका मुक्तिमें अधिकार होता है इति ॥ ६ ॥ ७ ॥

ततो देहावसानेऽसौ नीयतेऽग्न्यादिभिर्हृतम् ।
देवयानेन मार्गेण देवताभिर्यथाक्रमम् ॥ ८ ॥

मुक्तिके अधिकार होनेके अनंतर जब तिस उपासकका शरीर छुटता है तो उसको अग्नि वरुण इन्द्र प्रजापति आदि देवता अर्चिरादि क्रमसें देवयानमार्गसें विष्णुलोकको लेजाते हैं इति ॥८॥

यावत्तु विरजानद्यास्तटं तावद्व्रजंति ताः ।
ततस्तं पार्षदा विष्णोर्नयंत्यागत्य सादरम् ॥ ९ ॥

वैकुंठके मार्गमें विरजा नामकी नदी आती है सो उस नदीके किनारेपर्यंत तिस उपासकके साथ सो देवता जाते हैं फिर तहांसे आगे वैकुंठसें विष्णु भगवान्के पार्षद आयकरके तिसको आदरपूर्वक लेजातेहैं इति ॥ ९ ॥

सो पार्षद किस प्रकारसें लेजाते हैं सो वर्णन करते हैं

सुस्नातो विरजा नीरे निर्धूताशेषकिल्बिषः ।
दिव्यगंधैः पटैर्माल्यैरप्सरोभिरलंकृतः ॥१०॥
दिव्ययानसमारूढो दिव्यदेहधरस्तथा ।
गीयमानश्च गंधर्वैः सुरैश्चाप्यभिवंदितः ॥११॥
नित्यं सत्त्वगुणोपेतं परानंदमयं सदा ।
वैकुंठं परमं धाम विष्णोर्विशति भास्वरम् १२

प्रथम विरजानदीके जलमें भलीप्रकारसे स्नान करके सो उपासक सर्व जन्मोंके पापदोषोंसें रहित भया शुद्ध होवेहै और फिर विष्णु भगवान्की

आज्ञासें वैकुंठसे आईहुई अनेक दिव्य अप्सरायों उसको दिव्य सुगंधलेपनसें और दिव्य सुंदर वस्त्रोंसें तथा दिव्य पुष्पमालायोंसें और दिव्य भूषणोंसें अलंकार करती हैं। तिसके अनंतर सो दिव्य विमानपर चढकर वैकुंठमें रहनेलायक दिव्य देहवाला हुया चारोंतरफसें गंधर्वोंकरके यश गायन कियाहुया विष्णुके प्रकाशवान् परमधाम वैकुंठलोकमें प्रवेश करता है जो वैकुंठलोक सर्वदाकाल केवल सत्त्वगुणकरके युक्त है और नित्यंप्रति परम आनंदका स्थान है इति ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

हरेर्दर्शनतोऽपास्तसर्वसंसारबंधनः ।
सर्वान्भोगानवाप्नोति विष्णुतुल्यान्निरंतरम् १३

तदनंतर वैकुंठमें साक्षात् विष्णु भगवान्के दर्शन करनेसें सो उपासक सर्व प्रकारके संसार-बंधनोंसे मुक्त हुया विष्णुके समान वैकुंठमें सर्व दिव्य भोगोंको सर्वदाकाल प्राप्त होवे है इति ॥ १३ ॥

विष्णोर्निर्देशतस्तत्र स्वाधिकारानुसारतः ।
सालोक्यं वापि सामीप्यं सायुज्यं वा सरूपतां॥
संप्राप्य रमते नित्यं विष्णुलोके निरामयः ।
पुनरावर्त्तनं तस्य न भवेदिह कर्हिचित् ॥१९॥

सो तहां वैकुंठमें विष्णु भगवान्‌की आज्ञासें सो उपासक पुरुष अपनी उपासनाके न्यून अधिक भावके अनुसार सालोक्य वा सामीप्य वा सायुज्य वा सारूप्य इनमेंसें एक पदको प्राप्त होताहै तिनमें विष्णुके लोकमें किसी जगामें जाकर निवास करनेको सालोक्यपद कहते हैं और विष्णु भगवान्‌के समीप सेवामें रहनेको सामीप्य-पद कहते हैं और विष्णु भगवान्‌का सखा बनके रहनेको सायुज्यपद कहते हैं तथा विष्णुके तुल्य चतुर्भुज स्वरूप होकर वैकुंठमें रहनेको सारूप्य-पद कहते हैं सो इन चारोंमेंसें एक पदको प्राप्त होकरके सर्व प्रकारके दुःख वा क्लेशोंसें रहित भया सो उपासक विष्णुलोकमें अपनी इच्छानुसार सर्वदाकाल रमण करता है और फिर इसलोकमें कबी जन्म धारण नहि करता है अर्थात् सर्वदा-

काल तहांहि वैकुंठलोकमें निवास करता है इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

इयं मुक्तिः समाख्याता सगुणा पृथिवीपते ।
निर्गुणायाः प्रकारं च शृणु वक्ष्यामि तेऽधुना ॥

हे पृथवीपते ! यह मैने तेरेको सगुणा मुक्तिका प्रकार कथन किया है अब निर्गुणाका प्रकारभी तेरेको कहताहूं सो तूं श्रवण कर इति ॥ १६ ॥

जीवस्योपाधिशून्यस्य ब्रह्मरूपेण या स्थितिः ।
मुक्तिर्वेदांतसिद्धांते निर्गुणा सा समीरिता १७

हे राजन् ! स्थूल सूक्ष्म शरीररूप उपाधिसे रहित भये जीवकी जो ब्रह्मरूपसें स्थिति है सो वेदांतसिद्धांतमें निर्गुणा मुक्ति कथन करी है इति ॥ १७ ॥

अब निर्गुणामुक्ति किसप्रकारसे होवेहै सो निरूपण करते हैं ।

ब्रह्मज्ञानाद्यदा जीवः सर्वं ब्रह्ममयं जगत् ।
आत्मानं च विजानाति तदभिन्नं विशांपते १८

सुरासुरमनुष्येषु पशुपक्ष्यादिजंतुषु ।
भेदभावं परित्यज्य समभावेन पश्यति ॥१९॥

हे विशांपते राजन् ! ब्रह्मज्ञानके पूर्ण निश्चय और अभ्यास होनेसें जब यह ज्ञानी पुरुष सर्व चराचर जगत्को एक ब्रह्मरूप देखता है और उसके साथ अपने आत्माकोभी अभिन्न जानता है। तथा देवता दैत्य मनुष्य पशु पक्षी आदि सर्व जीवोंमें ऊंचनीचपणेका भेदभाव छोडकरके सबमें समभावसें देखता है इति ॥१८॥१९॥

समं पश्यंस्तु सर्वत्र सततं ज्ञानचक्षुषा ।
न किंचिदपि राजेन्द्र भूतं द्वेष्टि न कांक्षति २०

तथा हे राजेन्द्र! सर्वत्र समभावसें ज्ञानरूप नेत्रसें देखताहुया किसीभी भूतप्राणीसें द्वेष और प्रीति नहि करता है अर्थात् शत्रु मित्र दोनोंको समभावसें देखता है इति ॥ २० ॥

रागद्वेषक्षये राजन् प्रवृत्तिः शिथिलायते ।
सांसारिकविहारेषु सदोदासीनता भवेत् २१

हें राजन् ! इसप्रकार रागद्वेषके नाश होनेसें तिस ज्ञानी पुरुषकी संसारके सर्व व्यवहारोंमें प्रवृत्तिके शिथिल होनेसें सर्वदाकाल उदासीनता होजातीहै इति ॥ २१ ॥

उदासीनवदासीनः पश्यंल्लीलामयं जगत् ।
बांधवः सर्वभूतानामसंगो विहरत्यसौ ॥ २२ ॥

और उदासीनकी न्यांई स्थित हुया सर्व जगत्को ईश्वरकी लीलारूप समझता है और सर्वभूतप्राणियोंमें मित्रभावसें वर्त्तता हुया जगत्में असंग होकर विचरता है इति ॥ २२ ॥

प्रारब्धकर्मभोगांते हित्वा देहमिमं नृप ।
ब्रह्मण्येव लयं याति यत्र कुत्रापि वा मृतः २३

और फिर प्रारब्धकर्मके भोगके अंत होनेसें इस शरीरको छोड करके सो ज्ञानी पुरुष चाहे तीर्थआदि पवित्र स्थानमें शरीर छोडे चाहे किसी अपवित्र स्थानमें मरे परंतु सर्व प्रकारसें सो ब्रह्ममेंहि लीन होवेहै इति ॥ २३ ॥

सो ब्रह्ममें किस प्रकारसें लीन होता है सो दिखलाते हैं।

शरीरं पंचभूतेषु कारणेष्विन्द्रियाणि च ।
कर्माण्यमित्रमित्रेषु जीवो ब्रह्मणि लीयते २४

मोक्षकालमें ब्रह्ममें लीन होनेके समय ज्ञानी पुरुषका शरीर तो पंचमहाभूतोंमें लीन होजाता है और सब इन्द्रियां अपनेअपने कारणोंमें लीन होजातीहैं और उसके शुभाशुभ कर्म उसके मित्र और निंदक शत्रुवोंमें चलेजाते हैं अर्थात् उसकी सेवा शुश्रूषा स्तुति करनेवालोंमें पुण्य चले जातेहैं और दुःख क्लेश देनेवाले वा निंदक पुरुषोंको पाप चले जाते हैं और पापपुण्यसें रहित हुया उसका जीवात्मा ब्रह्ममें लीन होजाता है इति ॥२४॥

परे ब्रह्मणि संलीनः सच्चिदानंदरूपिणि ।
सदानंदमयस्तत्र जीवभावं विमुंचति ॥ २५ ॥

इसप्रकार ज्ञानी पुरुष सत् चित् आनंदरूप परब्रह्ममें लीन भया सर्वदाकाल आनंदरूप हुया अपने तुच्छ जीवभावको छोडकर ब्रह्मके साथ एकीभावको प्राप्त होजाताहै इति ॥ २५ ॥

राजोवाच ।

परे ब्रह्मणि लीनानां जीवानां पुनरुद्भवः ।
जायते वा नवा तस्माद्योगीन्द्रैतद्ब्रवीहि मे २६

राजा बोले हे योगीन्द्र! जो जीव मुक्त होकर परब्रह्ममें लीन होतेहैं तो फिर कबी तिनका तहांसें इस संसारमें आगमन होवे है कि नहि होता सो कृपाकरके मेरेको कथन करो इति ॥ २६ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

परे ब्रह्मणि लीनानां मुक्तानां पुनरागमः ।
न भवेदिह संसारे कदाचिदपि भूपते ॥ २७ ॥

ब्रह्मानंदजी बोले हे भूपते! परब्रह्ममें लीन हुये मुक्त पुरुषोंका फिर कदाचित्‌भी इस संसारमें पुनः आगमन नहि होता है इति ॥ २७ ॥

यथा नदी महांभोधौ लीना तन्मयतां व्रजेत् ।
हित्वा स्वनामरूपं च तथा ब्रह्मणि ब्रह्मवित् २८

जैसे नदी अपना नाम और रूप छोड करके समुद्रमें मिलकर समुद्ररूप होजातीहै तैसेहि ब्रह्म-वेत्ता ज्ञानी पुरुष ब्रह्ममें लीन होजावे है इति ॥२८॥

यथा घटविनाशेन घटाकाशो नराधिप ।
विलीयते महाकाशे तथा ब्रह्मणि ब्रह्मवित् २९

तथा जैसे घटके फूटनेसें उसका घटाकाश महा-काशमें लीन होजाताहै तैसेहि ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुष ब्रह्ममें लीन होजाता है इति ॥ २९ ॥

यथा दीपोऽस्तमायातो हित्वा क्षुद्रस्वरूपताम् ।
अग्नितत्त्वे लयं याति तथा ब्रह्मणि ब्रह्मवित् ३०

तथा जैसे अस्त हुया दीपक अपने तुच्छ स्वरूपको छोड करके सर्वव्यापक अग्नितत्त्वमें लीन होजाता है तैसेहि ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुष ब्रह्ममें लीन होजावे है इति ॥ ३० ॥

इयं स्यान्निर्गुणा मुक्तिर्निष्कामानां महीपते ।
भोगाभिलाषिणां प्रोक्ता सगुणा सर्वकामदा ३१

हे महीपते ! यह निर्गुणा मुक्ति मैंने तेरेको

कथन करी है सो यह निष्काम विरक्त पुरुषों-केलिये है और पहले जो सगुणा मुक्ति कथन करी है सो भोग भोगनेके अभिलाषी पुरुषोंके लिये सर्वकामना देनेवाली है ऐसा जानना चहिये इति ॥ ३१ ॥

राजोवाच ।

भगवन्पुरुषार्थेन किंवा प्रारब्धकर्मणा ।
जनैरवाप्यते मुक्तिः पुनर्जन्मविवर्जिता ॥३२॥

राजा बोले हे भगवन्! आपने जो गमन आगमनसें रहित मुक्ति कथन करी है सो क्या यह मुक्ति मनुष्यको पुरुषार्थ करनेसें प्राप्त होती है किंवा पूर्वके प्रारब्धकर्मके योगसें स्वयमेव प्राप्त होजाती है इसका उत्तर कृपा करके मेरेको कथन करो इति ॥ ३२ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

प्रारब्धकर्मयोगेन मानुष्यं प्राप्यते नृप ।
तत्रापि सत्कुले जन्म सतां संगतिरेव च ३३

ब्रह्मानंदजी बोले हे नृप! प्रारब्धकर्मके योगसे तो प्रथम मनुष्यदेहकी प्राप्ति होती है और श्रेष्ठ उत्तम कुलमें जन्म होता है तथा ज्ञानवान् सत्पुरुषोंका संग प्राप्त होता है इति ॥ ३३ ॥

पुरुषार्थाद्गुरोः सेवा ज्ञानस्याधिगमस्तथा ।
ब्रह्मनिष्ठा च राजेन्द्र मुक्तिरेवं भवेत्क्रमात् ३४

और हे राजेन्द्र! पुरुषार्थकरके गुरुकी सेवा होती है और ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होती है तथा ब्रह्मनिष्ठामें अभ्याससें स्थिति होती है इसप्रकारसे क्रमसें मुक्ति होती है अर्थात् प्रारब्धकर्म और पुरुषार्थ दोनोंसें मुक्तिकी प्राप्ति होती है इति ॥ ३४ ॥

प्रारब्धं पुरुषार्थश्च सर्वकार्येषु सर्वदा ।
परस्परोपयोगित्वं भजतो नात्र संशयः ॥३५॥

हे राजन्! प्रारब्धकर्म और पुरुषार्थ यह दोनोंहि सर्व कार्योंमें सर्वदाकाल परस्पर सहायक होते हैं इसमें कुछ संशय नहि है इति ॥ ३५ ॥

यथांधश्चैव पंगुश्च मिथः प्राप्य सहायताम् ।
मार्गं प्रति महाराज ! गच्छतस्तन्निदर्शनम् ३६

हे महाराज ! जैसे अंधा और पंगला दोनों परस्पर एक दूसरेकी सहायतासें मार्गमें चलते हैं तैसेंहि प्रारब्धकर्म और पुरुपार्थकी वावतमेंभी दृष्टांत समझलेना चहिये इति ॥ ३६ ॥

यथा नारी नरश्चैव राजञ्जनयतः सुतम् ।
मिलित्वा तद्वदेवात्र द्वयोर्मेलनमिष्यते ॥३७॥

हे राजन् ! जैसे स्त्री और पुरुप दोनों मिलकरके पुत्रको उत्पन्न करते हैं तैसेहि प्रारब्ध और पुरुपार्थ दोनोंके मिलनेसेंहि सर्व कार्य सिद्ध होते हैं इति ॥ ३७ ॥

प्रारब्धकर्मतस्त्वं च प्राप्तोऽस्युत्तमतां भुवि ।
मुक्तिं प्रति महीपाल पुरुषार्थपरो भव ॥ ३८ ॥

सो हे महीपाल ! तूंभी पूर्वके शुभ प्रारब्धकर्मसे पृथिवीमें उत्तमपणेको प्राप्त हुया है अर्थात् मनुष्योंमें राजा हुया है सो अव तेरेको पुरुषार्थ

करके तेरे आत्माकी मुक्तिके लिये भली प्रकारसें यत्न करना चहिये इति ॥ ३८ ॥

राजोवाच ।

भगवंस्त्वन्मुखांभोजवचनामृतधारया ।
परितृप्तोऽस्म्यशेषेण गतो मे संशयज्वरः ३९

राजा बोले हे भगवन्! आपके मुखकमलसें निकली हुई उपदेशरूप अमृतकी धारासें मैं पूर्ण रीतिसें तृप्त होगया हूं और मेरे हृदयमें जो संशयरूप ज्वर था सो आज संपूर्ण निवृत्त होगया है इति ॥ ३९ ॥

श्रोतव्यं च श्रुतं सर्वं ज्ञातं ज्ञातव्यमेव च ।
नाधुना किंचिदन्यत्तु श्रोतुं ज्ञातुं च विद्यते ४०

तथा जो कुछ सुननेके योग्य था सो मैंने सबी सुनलिया है और जो कुछ जाननेके योग्य था सो सब जानलिया है अब कुछ दूसरी बात सुनने वा जानने योग्य नहि रही है इति ॥ ४० ॥

पूर्णपुण्यप्रभावेण जातं मे तव दर्शनम् ।
प्राप्तं च परमं ज्ञानं मया तव समागमात् ४१

और पूर्वके पूर्ण पुण्यके प्रभावसे मेरेको आपका दर्शन हुया है और आपके समागम सत्संगसें मेरेको परम उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति हुई है इति ॥ ४१ ॥

गमनायाधुनानुज्ञा दीयतां मे दयानिधे ।
गृहं प्रति करिष्यामि यथोक्तं भवताऽखिलम् ॥

हे दयानिधे ! अव मेरेको आप मेरे घरको जानेके लिये अनुज्ञा दीजिये मैं वहां जायकर जोजो आपने उपदेश किया है उस सवका विचार करके धारण करूंगा इति ॥ ४२ ॥

ब्रह्मानंद उवाच ।

स्वस्त्यस्तु ते महाराज संवादमिममावयोः ।
हृत्पंकजे समाधाय गच्छ राजन्यथासुखम् ४३

ब्रह्मानंदजी वोले हे महाराज ! तुमारा कल्याण हो हमारे और तुमारे इस संवादको

तुम भली प्रकार अपने हृदयकमलमें धारण करके हे राजन्! जैसे तुमारी इच्छा होवे गमन करो इति ॥ ४३ ॥

इत्यादाय गुरोराज्ञां प्रणिपत्य च पादयोः ।
समर्प्य पुष्कलं द्रव्यं सानुगः प्रययौ नृपः ४४

इसप्रकार गुरुकी आज्ञा लेकर और उनके चरणोंमें नमस्कार करके तथा पुष्कल गुरुदक्षिणारूप द्रव्य भेट करके अपने सब अनुचरोंके सहित राजा विदा होकर चलाजाता भया इति ॥ ४४ ॥

अब संक्षेपसें गीताका माहात्म्य कथन करते हैं ।

इयं गीता समागीता ब्रह्मानंदेन योगिना ।
हृदि नीता तथाधीता नृणां मोक्षप्रदायिनी ४५

यह गीतानामक शास्त्र ब्रह्मानंदनामक योगीने निर्माण किया है इसको हृदयमें धारण करनेसें वा पाठ करनेसें मनुष्योंको मुक्तिकी प्राप्ति होती है इति ॥ ४५ ॥

गीताज्ञानं सुखाधानं निधानं भोगमोक्षयोः ।
सम्यग्ज्ञेयं सदा ध्येयं समाधेयं निरंतरम् ४६

इस गीताके ज्ञानको मुमुक्षु पुरुषोंको भली-प्रकारसें जानना चहिये और सर्वदाकाल इसका चित्तमें विचार करना चहिये तथा निरंतर मनन करके निश्चय करना चहिये इति ॥ ४६ ॥

यः पठेत्प्रयतो भूत्वा शृणुयाद्वा समाहितः ।
तस्य सर्वाणि पापानि प्रलयं यांति तत्क्षणात्४७

तथा जो पुरुष इस गीताशास्त्रको शुद्ध स्थिर-चित्त होकर नित्यंप्रति पाठ करता है तथा जो स्थिरचित्त होकर इसका श्रवण करता है तिसके सर्व पाप तत्काल नष्ट होजाते हैं इति ॥ ४७ ॥

ग्रहाश्चोपशमं यांति सर्वे नश्यंत्युपद्रवाः ।
सकामः प्राप्नुयात्कामान्निष्कामो मोक्षमाप्नु-यात् निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ ४८ ॥

तथा इस गीताके पाठ वा श्रवण करनेसें क्रूर फल देनेहारे सर्व ग्रह शांत होजाते हैं तथा

मनमें जोजो कामना होती है सोसो सबी पूर्ण होजाती हैं और निष्काम पुरुष मोक्षपदको प्राप्त होता है निष्काम पुरुष मोक्षपदको प्राप्त होता है यहां अंतपदका दुबारा उच्चारण शास्त्रकी समाप्तिके लिये है इति ॥ ४८ ॥

इति श्रीब्रह्मानंदगीतायां मुक्तिस्वरूपनिरूपणं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

समाप्तमिदं गीताशास्त्रम् ।

(श्लोकसंख्या ७१४)

रसाब्धिनन्दचन्द्राब्दे माघमासे सितेदले ।
सप्तम्यां पूर्णतांयातो ग्रंथोयं पुष्कराश्रमे ॥